ओ३म्
आर्य जगत्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 27 दिसम्बर 2015 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 27 दिसम्बर 2015 से 02 जनवरी 2016

पौ.कृ. –02● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 52, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. थर्मल पानीपत में 'मेरा घर मेरा स्कूल' नाम से हुई कार्यशाला

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल थर्मल कालोनी पानीपत में को एक अनोखी कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें एक आदर्श कर्मचारी के कर्त्तव्यों का ज्ञान कराया गया तथा डी.ए.वी. स्कूल के वातावरण को आर्यमय बनाने में कर्मचारियों की भूमिका पर महत्त्व डाला गया। इस कार्यशाला को एक वाक्य में समेटते हुए इसे मेरा स्कूल मेरा घर नाम दिया गया। इस कार्यशाला में 185 ड्राईवर, कन्डक्टर, पियन, आया और सफाई कर्मचारियों ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया।

'आदर्श जीवन' और 'मेरे घर का आधार मेरा स्कूल' विषय पर श्री इन्द्र सिंह (एच.सी.एस.) और डॉ. धर्मदेव विद्यार्थी ने अपने विचार व्यक्त किये। श्री इन्द्र सिंह ने कहा कि हमें आदर्श जीवन जीना चाहिए ताकि समाज के दूसरे लोग भी हमारा अनुकरण कर सकें। बच्चे प्रतिदिन घर और अपने परिवेश में जैसा देख रहे हैं वैसा ही बनने और करने की कोशिश करते हैं। यदि हम चाहते हैं कि भारत का भविष्य कर्त्तव्य परायण, ईमानदार, देशभक्त बने तो हमें भी अपने जीवन में इन गुणों का पालन करना होगा, तभी हमारा परिवार समाज, राष्ट्र के प्रति दायित्व पूर्ण होगा।

डॉ. धर्मदेव विद्यार्थी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि निश्चित ही हमारे परिवार का आधार हमारा स्कूल है, अतः हमें अपने स्कूल के प्रति और ज्यादा सजगता के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। हमारा स्कूल न केवल हमारे अपितु दूसरे हजारों परिवारों के भविष्य का भी आधार है, अतः हमें अपने आधार स्कूल के प्रति ईमानदारी से अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए।

कार्यक्रम में डॉ. विद्यार्थी द्वारा आर्यसमाज के कार्यों की विस्तारपूर्वक जानकारी दी गई।

इस कार्यक्रम में आये कर्मचारियों ने बीड़ी, सिगरेट, शराब छोड़ने और कन्याओं की सहायता का संकल्प किया। सभी इस कार्यक्रम में आकर स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर रहे थे। उन्होंने कहा कि कर्मचारियों के लिए इस प्रकार का कार्यक्रम पहली बार आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में आकर हम सभी बहुत ही खुश हैं। इस प्रकार के कार्यक्रम भविष्य में समय–समय पर होने चाहिए।

कार्यक्रम के अन्तिम सत्र में श्री महेश चोपड़ा (कोषाध्यक्ष डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धक समिति) ने संक्षिप्त सम्बोधन में कहा–यह कार्यक्रम अपने आप में अद्वितीय है क्योंकि इस प्रकार के सेमिनार साधारणतः शिक्षक वर्ग के लिए आयोजित किये जाते हैं, किन्तु डॉ. विद्यार्थी द्वारा जोन के कर्मचारियों के लिए कार्यक्रम का आयोजन अनुकरणीय है, क्योंकि इनको भी प्रशिक्षण एवं कर्त्तव्य के प्रति सजगता की आवश्यकता है।

एम.आर.ए.डी.ए.वी. सोलन में योग शिविर का आयोजन

एम.आर.ए.ड.ए.वी. पब्लिक स्कूल सोलन में एक तीन दिवसीय वैदिक योग शिविर का आयोजन बड़े हर्षोल्लास के साथ किया गया। इस योग शिविर में कक्षा नवीं व दसवीं के लगभग 300 विद्यार्थियों ने उत्साहपूर्वक बढ़–चढ़ कर भाग लिया। इस शिविर का उद्देश्य विद्यार्थियों को अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरुक करना, एकाग्रता तथा शारीरिक श्रम व योग के महत्व के बारे में जानकारी देना था।

कार्यक्रम का शुभारम्भ प्रातः वैदिक यज्ञ के साथ किया गया। यज्ञ के पश्चात् प्रधानाचार्या श्रीमती अनुपमा शर्मा ने भी इस योग सत्र में भाग लेते हुए बच्चों के साथ योग किया। सभी ने भस्त्रिका, अनुलोम विलोम, कपाल भाती, उज्जैनी, भ्रामरी शीतली प्राणायाम आदि का अभ्यास किया। फिर ध्यान तथा उसके बाद पर्वतासन, वज्रासन, त्रिकोण आसन, अर्धचक्रासन, भुजंगासन, गरुड़ासन, मत्स्यासन, अर्धसर्वांग आसन, शलभासन नौकासन आदि योगासनों का अभ्यास किया। इस शिविर में आर्य युवा समाज की ओर से श्री दीपक उपाध्याय, विनय शर्मा व निशा वर्मा ने इस शिविर के आयोजन में अपना सहयोग दिया।

स्कूल की प्रधानाचार्या श्रीमती अनुपमा शर्मा ने **''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः''** का संदेश देते हुए बताया कि स्वस्थ शरीर अनमोल होता है और इसे नीरोग व स्वस्थ बनाए रखने के लिए हमें योग को अपनी दिनचर्या का अपरिहार्य हिस्सा बनाना चाहिए। योग से शारीरिक, आत्मिक, मानसिक और बौद्धिक शक्ति का विकास होता है। उन्होंने विद्यार्थियों से अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरुक रहते हुए योग को अपनाने तथा अपने व्यक्तित्व के विकास की ओर ध्यान देने के लिए प्रेरित किया।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 27 दिसम्बर, 2015 से 02 जनवरी, 2016

यज्ञ रचा, दान कर

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

न त्वां शतं चन ह्रुतो, राधो दित्सन्तमामिनन्।
यत् पुनानो मखस्यसे।।

ऋग् ९.६१.२७

ऋषिः **अमहीयुः आङ्गिरसः**। देवता **पवमानः सोमः**। छन्दः **गायत्री**।

● (हे आत्मन्!), (**राधः**) धन को, (**दित्सन्तं**) दान करना चाहते हुए, (**त्वा**) तुझे, (**शतं चन**) सौ भी, (**ह्रुतः**) कुटिल वृत्तियाँ व कुटिल जन, (**अ आमिनन्**) हिंसित अर्थात् मार्ग–च्युत न कर पायें, (**यत्**) जब, (**पुनानः**) (स्वयं को) पवित्र करता हुआ। (तू), (**मखस्यसे**) यज्ञ रचाता है।

● हे पवमान सोम! हे स्वयं को तथा मन, बुद्धि आदि को पवित्र करने वाले सात्विक–वृत्ति जीवात्मन्! जब तू परोपकार का यज्ञ रचाता है और अपना धन किन्हीं सत्पात्र व्यक्तियों को या संस्थाओं को दान देने का संकल्प करता है, तब बहुत–सी कुटिल स्वार्थ–वृत्तियाँ और बहुत–से कुटिल मनुष्य तेरे उस दान–व्रत की हिंसा करना चाहते हैं और तुझे दान के मार्ग से विचलित करने का प्रयत्न करते हैं। स्वार्थ–वृत्ति कहती है कि सहस्त्र, दश सहस्त्र, पचास सहस्त्र, लाख, दो लाख रूपया तुम अन्यों को दान कर कर रहें हो, तो क्या स्वयं भूखे मरना चाहते हो? देखो, सब अपनी सम्पति बढ़ा रहे हैं; जो सहस्त्रपति है वह लक्षपति बन रहा है, जो लक्षपति है वह करोड़पति बन रहा है। उनके पास कई–कई कोठियाँ हैं, मोटरकारें हैं, सेवक हैं। क्या दान का ठेका तुमने ही लिया है? क्या तुम्हारे ही भाग्य में यह लिखा है कि स्वयं तो मोटा–झोटा पहनो, रूखा–सूखा खाओ, झोपड़ी जैसे मकानों में रहो और दूसरों पर धन लुटाओ। पहले अपनी और अपने कुटुम्ब की स्थिति सुधारो, फिर अन्यों की सुध लेना। हे आत्मन्! तू उस स्वार्थ–वाणी को मत सुन। तुझे दान करने के लिए उद्यत देख कई स्वार्थी परिचित मनुष्य भी आकर मिथ्या ही आलोचना करते हैं कि तुम जिस संस्था को दान करने जा रहे हो, उसकी आन्तरिक अवस्था को भी जानते हो? उनमें सब खाऊ–पिऊ बैठे हैं, तुम्हारा दिया हुआ दान उन्हीं के पेट में जाएगा। हे आत्मन्! तू उन उन स्वार्थी जनों के भी कुटिल परामर्श पर ध्यान मत दे। सौ प्रकार की स्वार्थ–भावनाएँ और सौ स्वार्थी–जन भी तुझे तेरे दान के संकल्प से विचलित न कर सकें।

हे मेरे आत्मन्! वेद–शास्त्रों की वाणी सुन, जो तुझे दान के लिए प्रेरित कर रही है। तू अपनी कमाई में से प्रतिदिन या प्रतिमास कुछ निश्चित प्रतिशत दान–खाते में डाल और उसे लोक–कल्याण में व्यय कर। दान से दक्षिणा पानेवाले का तो हित होता ही है, उससे भी अधिक हित और मंगल दाता का होता है, यह वैदिक संस्कृति की भावना है। इसके विपरीत, "अकेला भोग करनेवाला मनुष्य पाप का ही भोग करता है"।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

भक्त और भगवान

● महात्मा आनन्द स्वामी

स्वामी जी कह रहे थे सुख और दुःख की वास्तविक अनुभूति तो मन में होती है। मन में सुख न हो, मन में शान्ति न हो तो शरीर के सुखों का एक कौड़ी भी मूल्य नहीं।

यह शरीर प्रभु दर्शन पाने के लिए मिला है क्योंकि और किसी भी शरीर में प्रभु–दर्शन नहीं होता। यह शरीर अन्नमय कोश कहलाता है। इसके आगे प्राणमय कोश, फिर मनोमय, तब विज्ञानमय और फिर आनन्दमय कोश में आत्मा के साथ साथ परमात्मा रहता है। साथ साथ रहने पर भी आत्मा तब तक परमात्मा को देख नहीं पाता जब तक इसकी मैल दूर न हो जाए।

स्वामी जी ने बताया आत्मा के समर्पण का अर्थ क्या है? किस प्रकार यह आत्म समर्पण होता है ? सच्चे प्रेम से, ईश्वर के लिए सच्चा प्यार जाग उठे तो आत्म समर्पण स्वयमेव हो जाता है। तब मार्ग मिलता है, प्रभु का दर्शन भी होता है।

अब आगे...

परन्तु यह विश्वप्रेम और विश्वरूप का प्रेम कोरे ज्ञान से तो उत्पन्न नहीं होता। कोरी श्रद्धा से भी उत्पन्न नहीं होता। कोरा ज्ञान उस मशीन की भांति है जिसके पुर्जों को तेल नहीं दिया गया। कोरी श्रद्धा उस तेल की भांति है जिसके पास कोई मशीन ही नहीं। तेल और मशीन दोनों हों, तब कार्य चलता है। ज्ञान और श्रद्धा दोनों का मिलाप हो, तब वह विश्वप्रेम और विश्वरूप का प्रेम उत्पन्न होता है जिससे भगवान के दर्शन होते हैं–

रैन का भूषण इन्दु है,
दिवस का भूषण भानु ।
दास का भूषण भक्ति है,
भक्ति का भूषण ज्ञानु ।।

ज्ञान के साथ–साथ भक्ति का, श्रद्धा का होना आवश्यक है। ऋग्वेद के श्रद्धा–सूक्त में श्रद्धा की अपार महिमा वर्णन की गई है। भक्त वहाँ पर प्रार्थना करता है कि मुझे प्रातःकाल के समय श्रद्धा दे, सायंकाल में श्रद्धा दे, दिन के समय दे, रात्रि के समय दे, सुख में दे, दुःख में दे, किसी भी समय श्रद्धा को मुझसे पृथक न होने दे क्योंकि इसके बिना कोई भी कार्य नहीं चलता। श्रद्धा के बिना मनुष्य उस तालाब की भांति है जिसमें पानी सूख गया हो। ऐसे तालाब को तालाब कौन कहेगा? आज के सांसार में एक ओर तो कोरी तर्क की आग में श्रद्धा को जलाकर राख कर दिया गया है और दूसरी ओर कोरी श्रद्धा के नशे में तर्क को जला डाला गया।

परन्तु ज्ञान भी हो, श्रद्धा भी हो, विश्वरूप का प्यार भी हो, विश्वप्रेम भी हो, तब करना क्या? क्या हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाना? नहीं, ऐसा करने से भगवान का दर्शन नहीं मिलता। वह परम आनन्द भी नहीं मिलता जिसके लिए मनुष्य भटकता फिरता है। ज्ञान, श्रद्धा, विश्वप्रेम और विश्वरूप का प्रेम, सब–के–सब मिल जायें, तब भावना को विश्वरूप समझकर अपने आप को दूसरों की सेवा में लगा दो, निष्काम; भगवान से फल की चिन्ता किये बिना। *इच्छा किये बिना* सेवा–धर्म को अपनाओ।

परन्तु आज तो कई लोगों ने सेवा को भी दुकानदारी बना लिया है। पत्रों में आपने कई बार चित्र देखे होंगे कि कुछ लोग हाथ में झाड़ू लेकर किसी गली या बाजार की सफाई कर रहे हैं। अच्छी बात है यह। सेवा का एक ढंग है। परन्तु जिस उद्देश्य से यह सेवा की जाती है वह तो किसी से छुपा नहीं। किसी से झाड़ू उधार लिया जाता है, फोटोग्राफर को पहले फोन कर दिया जाता है– हम फलां स्थान पर झाड़ू देने जा रहे हैं, वहाँ पहुँचकर हमारी तस्वीर खींच लो। चित्र खिंच जाने के साथ ही झाड़ू देने का कार्य बन्द हो जाता है। कह सुनकर चित्र समाचारपत्र में छपा दिया जाता है। चुनाव का समय आने पर मुहल्ले के लोगों को चित्र दिखाया जाता है कि देखो हमने तुम्हारी सेवा की थी, हमें वोट दो। यह तो सेवा है नहीं, दुकानदारी है। इसका दो कौड़ी भी मूल्य नहीं। सेवा करनी हो तो निष्काम भाव से, बिना किसी स्वार्थ के करो। प्रत्येक मनुष्य भगवान का मन्दिर है। मनुष्य की सेवा प्रभु की सेवा है। ऐसी सेवा से व्यक्ति निश्चित रूप से ऊपर उठता है। संसार का इतिहास ऐसी निष्काम सेवाओं के उदाहरणों से भरा पड़ा है।

सेवा का एक और उपाय है–दान! मनु महाराज ने कहा–

दानं एकं कलौ युगे।

कलियुग में दान–धर्म सबसे बड़ा साधन है। मरने के पश्चात् भी निष्काम भावना से दिया हुआ दान ही काम आता है। परन्तु आजकल किसी व्यक्ति को दान देने की बात कहिये तो वह उत्तर देगा– साहब, अपनी ही आवश्यकता पूरी नहीं होती तो दान कहाँ से दें? यह ''आवश्यकता पूरी नहीं होती'' भी एक विचित्र तमाशा है ! बुद्धिमत्ता की बात यह है कि जितनी आय हो, व्यय उसे कम रखा जाये। अपनी आवश्यकताओं को कम कर दिया जाये और आय कम हो

या अधिक, उसमें से एक भाग दान के लिए सुरक्षित रख दिया जाये अवश्य। परन्तु आज एक नया सिद्धांत जागृत हो गया है कि 'अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाओ जिससे तुम्हारी आय बढ़े।' 'खाओ, पीयो, ऐश करो' का सिद्धांत संसार का सिद्धांत बन गया है। हर समय, हर ओर, प्रत्येक स्थान पर एक ही ध्वनि सुनाई देती है– और लाओ ! और लाओ ! ऐसी अवस्था में दान कौन करे ? परन्तु यह विधि ठीक नहीं। जो लोग मन की शान्ति चाहते हैं, उन्हें समझना चाहिए कि जो व्यक्ति अन्धा–धुन्ध खर्च करता है और अपनी आवश्यकताओं को लगातार बढ़ाये चला जाता है, जो आय से अधिक व्यय करने के पश्चात् आय को बढ़ाने का यत्न करता है, उसे शान्ति कभी मिलेगा नहीं। मन की शान्ति के लिए आवश्यक है कि व्यय को आय के नीचे रखो। आत्मा की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि जो गरीब और दुःखी हैं, उन्हें दान देकर उनकी निष्काम सेवा करो।

ये सब बातें मैंने पिछले पाँच दिनों में आपके सामने रखीं, परन्तु इन सब बातों को सुनने के पश्चात् भी आप कह सकते हैं कि इनमें प्रभुदर्शन कहाँ है ? भक्त और भगवान की बात मैं आपको सुनाता रहा। भक्त को कैसा होना चाहिए यह बता दिया। भगवान कहाँ है यह भी बता दिया, परन्तु उनका दर्शन कैसे होता है यह तो बताया नहीं। अब सुनिये कि दर्शन कैसे होता है।

तीन विधियाँ हैं इस कार्य के लिए। पहली विधि केवल बच्चों का खेल है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं ; दूसरा उपाय मन बहलाने का एक ढंग है केवल, वास्तव में कुछ नहीं; तीसरी विधि वास्तविक विधि है।

पहली विधि तो आप इसी समय अपना सकते हैं। आँखों को बन्द करके दोनों पुतलियों को अंगुलियों से दबाइये। आँखों में एक प्रकाश–सा दिखाई देगा। कई लोग इस प्रकार से श्रद्धालु लोगों को भ्रम में डाल देते हैं। बेचारा भक्त समझता है कि उसे ईश्वर–दर्शन हो गये। वास्तव में वह प्रकाश ईश्वर नहीं, बहुत देर तक रहता भी नहीं। जो लोग इस प्रकार से ईश्वर–दर्शन करायें, उनसे होशियार रहिये। समझिये कि वास्तव में वे कुछ भी नहीं जानते। दूसरी विधि हठयोग की क्रियाओं की है। इस विधि से भी प्रकाश दिखाई देता है, ध्वनियाँ भी सुनाई देती हैं, मनुष्य को नींद–सी आने लगती है; परन्तु यह प्रकाश या ध्वनि ईश्वर नहीं। उसकी सहायता से मन एकाग्र होता है अवश्य, आगे बढ़ने में सहायता मिलती है ; परन्तु जो कुछ दिखाई या सुनाई देता है वह न तो ईश्वर है न आत्मा। वह केवल अन्नमय कोश का आन्तरिक खेल है। जो नींद–सी आने लगती है वह भी समाधि नहीं। बिल्कुल ऐसे है जैसे कोई व्यक्ति बहुत थककर या तेज नशा पीकर सो गया हो। इस विधि से आगे जाकर प्राण वायु को अपान वायु से मिलाकर उड्डियान बन्ध लगाया जाता है। मूलाधार चक्र से सुषुम्णा नाड़ी में प्रविष्ट होकर आज्ञाचक्र तक पहुंचने का प्रयत्न किया जाता है। वहाँ से ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचकर परमात्मा के दर्शन किये जा सकते हैं। परन्तु इस बात को कहना जितना सरल है, करना उतना आसान नहीं। योगी लोग हठयोग की इन क्रियाओं में वर्षों खर्च कर देते हैं। प्रायः वर्षों व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी उन्हें कुछ मिलता नहीं। तीसरी विधि है क्रियायोग। महर्षि पतंजलि ने क्रियायोग की प्रशंसा करते हुए लिखा है –

तपः–स्वाध्याय–ईश्वर–प्रणिधानानि क्रियायोगः।

तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान क्रियायोग है।

अब सुनिये कि तप क्या है। प्रायः तप का अर्थ समझा जाता है अपने–आप को तपाना और शारीरिक कष्ट देना, परन्तु ऐसा समझना उचित नहीं। जान–बूझकर शारीरिक कष्ट भोगना, किसी वृक्ष से पाँव बाँधकर उलटे लटक जाना, दायें या बायें हाथ को ऊपर उठाकर रखना और उठाये–उठाये सुखा देना, जान–बूझकर काँटों या सलाखें पर लेटना, गर्मियों में अकारण आग तापना या सर्दियों में अकारण ठण्डे पानी में डुबकियाँ लगाना, हाथों के होते हुए भी हाथ से भोजन न करना और इस प्रकार की दूसरी बातें करना तप नहीं है। तप का वास्तविक अर्थ है– सहनशीलता, दृढ़ इच्छाशक्ति और रुकावटों की चिन्ता किये बना आगे बढ़ते जाने की भावना। एक संकल्प हमने किया, सोच–समझकर किया, तब गर्मी या सर्दी, दुःख या सुख, सधनता या निर्धनता, सम्मान या अपमान, जीवन या मृत्यु किसी की भी चिन्ता किये बिना आगे बढ़ते चले जाना और लक्ष्य तक पहुंचे बिना कहीं भी रुकना नहीं, कहीं भी डगमगाना नहीं, कहीं भी संकल्प को शिथिल न होने देना– यह तप है। इसके बिना आत्मा और परमात्मा के मिलाप में कभी सफलता नहीं मिलती–

नातपस्विनो योगः सिद्धयति।

जो अतपस्वी है, जिसमें तप की भावना नहीं, उसका योग कभी सिद्ध नहीं होता। तप की इस भावना के बिना उस वासना का भी अन्त नहीं होता जो जन्म–जन्म से चित्त के साथ चली आती है और जिसका वर्णन मैंने पिछले दिनों किया–

अनादिकर्मक्लेशवासनाचित्रा प्रति
उपस्थितविषयजाला।
चाशुद्धि–अन्तरेण तपःसंभेदमापद्यत इति तपस
उपादानम्।।

अनादि काल से दुःख देनेवाली कर्मों की वासना के जो चित्र शरीर में बने हैं और वर्त्तमान विषय में फंसे कर्मों की जो मैल आत्मा पर जमी है, उसे दूर करने का तप के बिना और कोई मार्ग नहीं है।

परन्तु यह तप शरीर को अकारण कष्ट देनेवाला, मन में दुःख पैदा करनेवाला और पीड़ा देनेवाला नहीं होना चाहिए। अपितु ऐसा होना चाहिए जिससे मन में शुद्धता और निर्मलता उत्पन्न हो, इस बात की प्रसन्नता हो कि एक मैल और कट गई– एक और कलंक दूर हो गया। ब्रह्मचर्य को सबसे बड़ा तप कहा गया है। सत्य पर आरूढ़ रहकर कष्ट सहन करना भी तप है। ऐसे तप बुद्धि, मन, चित्त की मलिनता को दूर करते हैं। संसार के त्रिविध तापों से संतप्त मनुष्यों के लिए योगाभ्यास को अचूक औषध बतलाया गया है–

भवतापेन तप्तानां योगो परमौषधम्।।

संसार के (त्रिविध) तापों से तप्त होते हुए मानवों के लिए योगसाधन एक अचूक औषध है।

अब सुनिये कि स्वाध्याय क्या है? आजकर कुछ लोगों ने स्वाध्याय का भी उलटा अर्थ समझ लिया है। स्वाध्याय का वास्तविक अर्थ 'स्व' अर्थात् आत्मा को पढ़ना, जानना, देखना और समझना या ऐसे ग्रन्थों का पाठ करना है जिनसे आत्मा का ज्ञान मिलता हो। परन्तु कुछ लोगों ने स्वाध्याय का अर्थ समझ लिया है केवल पढ़ना; चाहे उपन्यास पढ़ो या कहानी; समाचार पढ़ो या वे विचित्र–सी पुस्तकें जिन्हें 'कॉमिक' कहते हैं; इसका नाम स्वाध्याय हो गया। सुनो, यह स्वाध्याय नहीं ! स्वाध्याय का अर्थ है वेद, उपनिषद् गीता, सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि को ध्यान के साथ सोच–समझकर न केवल पढ़ना, अपितु उन उपदेशों को अपने जीवन में धारण करने का प्रयत्न करना और उसके साथ–ही–साथ अपने–आपको पढ़ना, यह देखना कि अपने अन्दर क्या है, कितने गुण हैं, कितने अवगुण हैं, गुणों को बढ़ाने का प्रयत्न करना, बुराइयों को दूर करने का यत्न करना। कुछ लोगों को यह दूसरा स्वाध्याय सरलता से समझ में नहीं आता। वे कहते हैं कि वेद आदि अच्छे ग्रन्थ तो पढ़े जाते हैं, अपने–आपको कैसे पढ़ें? अपना–आप कोई पुस्तक तो है नहीं कि उसपर कुछ लिखा हो। जब लिखा ही नहीं तब पढ़ें कैसे? परन्तु सुनो, यह अपना–आप पुस्तक भी है, पढ़ा भी जाता है, और जो न पढ़े उसे एक दिन विवश होकर पढ़ना पड़ता है। यह शरीर है न ! इसके भीतर एक और शरीर है जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं। बाहर का शरीर इस जन्म में मिला है; इसी जन्म में समाप्त हो जायेगा। इसे साबुन मलो या इत्र–तेल, इसे रसीले भोजन खिलाओ या मीठे पकवान, इसे रेशमी कपड़ों में लपेटो या भव्य प्रासादों में रखो, अन्त में यह जायेगा अवश्य। यह तुम्हारा साथी नहीं। यह तो ऐसे है जैसे नदी को पार करते किसी ने लकड़ी का तख्ता पकड़ लिया हो। दूसरे किनारे पर वह तख्ते को छोड़ देगा, तख्ता उसको छोड़ देगा। बहुत संघर्ष होते हैं इसके लिए, बहुत झगड़े होते हैं। पृथ्वी और आकाश को एक किया जाता है; परन्तु यह है तो मिट्टी–

यूँ अगर देखिये क्या कुछ नहीं यह मुश्ते–गुबार।
और अगर सोचिये तो खाक भी इन्साँ में नहीं।।

इसका मूल्य पूछना हो तो उस बेटे से पूछिये जो अपने पिता के मृत शरीर को अपने हाथ से आग लगा देता है। उस पत्नी से पूछो जो मरे हुए पति को देखकर रोती है, चिल्लाती है, बिलखती है परन्तु साथ–ही–साथ यह भी कहती है, ''उठाओ इसे, ले–जाकर आग लगा दो, बहुत देर हुई जाती है।'' उस पिता से पूछो जो अपने लाड़ले बच्चे की लाश को गोद में उठाकर नदी में फेंक देता है क्योंकि वह अब केवल शरीर है, उसका बच्चा नहीं। यह शरीर तुम्हारा साथी भी नहीं। यह तो कुछ दिनों का साधन–मात्र है।

शेष अगले अंक में....

वैदिक प्रार्थना

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते ऽ भीषुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

यजु. 34.6

Just as an expert coachman
controls the reins and directs his horses,
so also our mighty mind controls our actions.
May my restless and
fickle mind
always remain full of noble thoughts.

कुशल सारथि ज्यों तुरंगों[1] को कशा[2] से हांकता है
रास कसता, ढील देता;
ठीक वैसे ही जो मनुष्यों को चलाता
है हृदय के बीच बैठा अजर, अतिशय वेगशाली,
मन वही मेरा घुमक्कड़, सदा शुभसंकल्पमय हो!

मातृमान पितृमान आचार्यवान पुरुषो वेद

● श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान होता है। वह कुल धन्य, वह सन्तान बड़ा भाग्यवान जिसके माता और पिता धार्मिक और विद्वान हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसी से नहीं। (स.प्र. द्वितीय, समु.)

बालक और बालिका के माता–पिता सदा उत्तम शिक्षा करें ताकि वे सभ्य हों। वे किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें, इससे उनको सावधान करें। जब वे कुछ बोलने और समझने लगें तब माता को चाहिये कि अपने सन्तानों को सुन्दर वाणी बोलने को कहें और अपने बालकों को यह उपदेश करे कि दूसरे बालिकाओं को बहन अथवा दीदी कहें और बालकों को भाई अथवा बन्धु समझें। भूत–प्रेत की असत्य कहानियों को न सुनावें और न विश्वास करें। कभी–कभी ऐतिहासिक पुरुषों क्षत्रपति शिवाजी एवं देश भक्त विरागना लक्ष्मीबाई की वीरता को सुनावें। इस प्रकार अपने बालकों–बालिकाओं में अच्छे संस्कार डालें जिससे वे बड़े होने पर कोई गलत काम न करें।

पाठशाला में मन लगाकर विद्याध्ययन करें। किसी प्रकार का नशा न करें। आपस में लड़ाई–झगड़ा से बचें, वाद विवाद न करें। जिद्दी न बनें, मातापिता को चाहिये कि अपने बालकों के हर जिद को पूरा न करें। सभी विद्यार्थी आपस में मैत्री भाव बनाये रखें। जाति को लेकर किसी प्रकार का भेदभाव न करें।

हम जानते हैं–अपने–अपने क्लास के, अपने मेल के बन्धुओं, बान्धवियों की अपनी–अपनी एक टोली होती है, लेकिन समय आने पर एक दूसरे की रक्षा के लिये सबको एक हो जाना चाहिये।

यदि कॉलेज से बाहर किसी लड़की का कोई अपमान करता है, उससे छेड़खानी करता है तो सभी विद्यार्थी एवं अन्य लोगों को भी चाहिये कि उन दुष्टों से मिलकर मुकाबला करें। साथ ही पुलिस को खबर दें, ताकि अपराधी पकड़ा जा सके। जैसे पड़ोस में आग लग जाने पर सब मिलकर उसे बुझाने में लग जाते हैं वैसे ही एक दूसरे की रक्षा के लिये सबको एक हो जाना चाहिये। जैसे भारत में अनेक भाषा अनेक मत अनेक पार्टियों के होते हुए भी जब कोई दुश्मन इस देश पर आक्रमण करता है तब–भारत की सभी जनता सभी राज्य के नेता सब मिलकर एक जुट हो जाते हैं, जिससे सैनिको का हौसला और बढ़ जाता है। बस इसी तरह सभी लोगों को समझना चाहिये, चाहे कोई भी राज्य हो, कोई किसी भी दल का हो, हम सभी भारतीय हैं। इस प्रकार देश की रक्षा के लिये, सबके विकास के लिये, एकता बनाये रखें और परस्पर निंदा, द्वेष, हिंसा और भ्रष्टाचार को त्यागकर शिक्षा जगत् के लिये कल्याण का कार्य करें और पुलिस प्रशासन की इतनी कड़ाई हो ताकि बलात्कार, चोरी, हत्या आदि अनैतिक कार्य न होने पावें। सभी विद्यार्थियों को चाहिये कि अपने राज्य की भाषा और अंग्रेजी के साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी को अवश्य जानें।

आजकल स्कूल एवं कॉलेज में भौतिकी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता में चरित्र निर्माण का कोई स्थान नहीं है। अंग्रेज तो चले गये पर अपनी सभ्यता और भाषा को छोड़ गये जिसके गुलाम भारत के अधिकांश लोग बने हुए हैं। यदि आप किसी सरकारी दफ्तर में जाकर जब तक अंग्रेजी में बात नहीं करेंगे तब तक आपकी सुनवाई नहीं होगी, सम्मान पूर्वक नहीं देखा जायेगा। आज विदेशी भाषा और सभ्यता की जितना कद्र है उतनी धोती पहनने और हिन्दी में बोलने वालों की नहीं है, प्रायः अंग्रेजी में बोलने वाले उन्हें गँवार समझते हैं, जबकि इन्हीं धोती धारी भारतीय भाषा को बोलने वाले स्वाधीन संग्रामियों खुदीराम बसु, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय, सरदार बल्लभभाई पटेल, डा. भीमराव आम्बेडकर, महात्मा गाँधी, डा. राजेन्द्र प्रसाद और लाल बहादुर शास्त्री आदि ने सन् 1947 के पहले अनेक बलिदानों के पश्चात् भारत को स्वतन्त्र किया था।

अतः भारत का संविधान बनने के समय ही 'हिन्दी' को राष्ट्रभाषा के रूप में घोषणा कर दी गई थी। आज जहाँ हिन्दी को सर्वोपरि, सर्वमान्य होना चाहिये वहाँ अंग्रेजी भाषा को ही सर्वोपरि समझा जाता है। चीन, जपान और अन्य विदेशी लोग अपने ही देश की भाषा बोलते हैं। उन देशों के मंत्रीगण जब विदेशों में जाते हैं, तब भी वे अपने ही देश की भाषा में बात करते हैं, बाद में उनकी भाषा को उस देश की भाषा में रूपान्तर कर दिया जाता है।

भारत के प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी जी जब भी विदेशों में गये अपनी राष्ट्र भाषा हिन्दी में ही भाषण दिये। किन्तु इनके पहले के मंत्रीगण जब भी विदेशों में गये अंग्रेजी में ही वार्ता किये। पर मोदी जी ऐसा नहीं किये, इसलिये उनके विदेशों की यात्रा से एक लाभ यह हुआ है कि भारत की प्रतिष्ठा बढ़ गई है। किन्तु भारत के अन्दर क्या हो रहा है, यह तो हर व्यक्ति को पता है। काला धन नहीं आया। मंहगाई नहीं कमी। इसके अलावा गत महीने प्रधान मंत्री जी ने जब बेटी बचावो–बेटी बढ़ाओ का नारा दिया तो मन बड़ा प्रफुल्लित हुआ कि चलो आर्यसमाज की आवाज में किसी ने तो स्वर मिलाया। पर दुःख की बात है कि उत्तर प्रदेश के बरेली जिले के गाँव की कुछ बच्चियों को स्कूल जाते समय कुछ दरिंदे–आवारा लड़कों ने उन बच्चियों से छेड़खानी अश्लील हरकत करने लगे थे, उनके इन अत्याचारों से बच्चियों के माता–पिता उन्हें स्कूल जाने से मना कर दिया।

आज भारत में मुख्य मंत्री और प्रधान की तरफ से पुलिस प्रशासन की कोई कड़ी व्यवस्था नहीं है। लड़कियों का घर से बाहर निकलना कठिन हो गया है। दिल्ली आदि राज्यों में बलात्कार की घटनायें घटती रहती हैं। दुष्ट लोग अत्याचार करते ही रहते हैं। इन जानवरों का दमन करने का एक ही उपाय है या तो आजीवन कारा दण्ड अथवा फाँसी दे दी जाय, अतः ऐसी कड़ी व्यवस्था से बलात्कार नहीं हो सकेगा। आज मंत्रीगण केवल अपनी कुर्सियों को बचाने मे लगे हुए हैं।

मुसलमानों को प्रसन्न रखने के लिये जिस भारत में माता के समान गौवों को ऋषि, मुनि, साधु–सन्त जन पूजन करते थे और आज भी कर रहे हैं उसे उन महापुरुषों की इस पुण्य भूमि को मुसलमानों ने (उन गौवों को) काटकर रक्त रंजित कर रहे हैं। भारत के हिन्दू नेता, मुसलमानों से वोट पाने के लिये, उन्हें अपना दामाद बना लिये हैं। भारत के लिये यह लज्जा की बात है, नेता लोग गौ हत्या के अप्रतिबन्ध पर ही विजय प्राप्त करना चाहते हैं। कुरआन में गौ को काटने का कहीं भी आदेश नहीं है। वे लोग हिन्दू राजाओं को परास्त करने के लिये ही गौवों को आगे करके हिंसा का सहारा लिया था और आज भी ले रहे हैं पर पद्धति अलग है। भारत एक गणतन्त्र देश है, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय आर्य परम्परा संस्कृति की जिसमें "गोवोविश्वास्य मातरः" अर्थात् हमारे वैदिक ग्रन्थों में 'गाय विश्व की माता है' ऐसी घोषणा की गई है। उसकी बलि देने की छूट कभी नहीं मिल सकती।

वेद एवं वैदिक ग्रन्थो में कहीं भी पशुओं को मारने की आज्ञा नहीं है, यजुर्वेद 13,42 कहता है 'गामा हिंसीरदितिं विराजम्' अर्थात् तेजस्वी अदिति– (अबध्य) गाय है, उसे मत मारो। घृतं दुहानामदितिं जनाय माहिंसीः अर्थात् गौ अबध्य है और लोगों को घृत देती है, इसलिये गाय की हिंसा मत कर। यजुर्वेद में गावो अमृतस्यनाभिः गाय के दूध को अमृत (जीवन देने वाला) बताया है।

'मा गामनागामदितिं वधिष्ट' (ऋग्वेद–8,10,15) अर्थात् निष्पाप उपकारक प्राणी की हिंसा मत करो।

विज्ञान की तरक्की ने एक तरफ आशीर्वाद दिया तो दूसरी तरफ अभिशाप बन रहा है। जहाँ एक तरफ उत्पादन में 30 कदम आगे बढ़ा है वहीं दूसरी तरफ सामाजिक क्षेत्र में पीछे रह गया है। आज भारत स्वतन्त्र होकर भी अनेक प्रकार के दुःखों से पीड़ित है। भद्र लोगों की संख्या बहुत कम हो गई है, अत्याचारियों की काफी वृद्धि हो रही है। आज युवतियों का बाहर निकलने का साहस नहीं रह गया है।

सिने जगत के नंगापन, बार डान्स, टी. वी. चैनेलों पर मॉडल सुन्दरी प्रतियोगिता आदि से युवा वर्ग की कामवासना बढ़ती जा रही है, उन्हें शराब आदि के नशे में किसी की बहन–बेटी का ज्ञान नहीं रहता सुयोग पाकर बलात्कार कर बैठते हैं, अतः ऐसे दरिंदों–जानवरों को फाँसी की सजा होनी चाहिये।

यदि अभी से माता–पिता अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दें, उनमें उत्तम धार्मिक भावना का संस्कार डालें तो वे बड़े होकर एक अच्छे इंसान बन सकते हैं।

यदि देश में अच्छे भद्र व्यक्ति अधिक होने लगे और बुरे लोग न्यून तो इससे देश और समाज का बराबर भला होता रहेगा। वेद में भगवान से प्रार्थना की गई है कि "यद् भद्र तन्न आ सुव" (यजु. अ. 30,3) हम सब भद्र चरित्र वान बनें।

केवल भौतिकी शिक्षा, प्रतिमा पूजन और मांस–मछली छोड़ देने से कोई धार्मिक नहीं बन सकता। धर्म का सम्बन्ध मन से है, जब तक क्षमा, मन का निग्रह, चोरी त्याग, शौच शुद्धि, इन्द्रिय निग्रह, निर्मल बुद्धि, प्रिय वाणी, विद्या, सत्याचरण, मैत्री भाव को अपनाकर, क्रोध को दमन नहीं करता तब तक कोई धार्मिक नहीं बन सकता।

विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन तभी हो सकता है जब वह कोई उत्तेजक, डीम अण्डा मांस आदि को न खाय। अश्लील गाने चलचित्रों को न सुने न देखे। केवल विद्याध्ययन में मन लगावे और योगासन, योगाभ्यास करते रहें। अन्याय पूर्वक भोग न करें। धन के लालच में किसी को न मारें। असत्य को सत्य साबित न करें, दुःख दायी होता है। सदा यथार्थ का पक्ष लें। माता–पिता की श्रद्धा से सेवा करते रहें, यह सबसे उत्तम धर्म है।

गिरे हुए निराश्रय को उठाना उसे अस्पताल पहुंचाना, अन्त्येष्टि संस्कार में भाग लेना अतः जितने अच्छे कर्म हैं धर्म कहा जाता है। आज कल के विद्यार्थियों को यौगिक आसन एवं योगाभ्यास भी करते रहना चाहिये, इन क्रियाओं से तन, मन में ऊर्जा की प्राप्ति होगी और रोगों से बचाव होगा।

मु.पो.मुरारई,
जिला–वीरभूम (प. बंगाल) 731219
मो.9158078011

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका– मोक्ष की अवस्था में जीवात्मा को देखने, सुनने आदि के लिए नेत्र श्रोत्र बिना शरीर कैसे मिलते हैं?

समाधान– आत्मा के पास अपनी देखने, सुनने की शक्तियाँ हैं, परन्तु वो बहुत कमजोर है। केवल अपनी शक्तियों से वो देख–सुन नहीं पाता। जब बंधन में आता है, तो प्राकृतिक शरीर की सहायता से, इन्द्रियों से वो काम करता है। जीवात्मा जब मोक्ष में जाता है, तो ईश्वर उसको अपनी शक्ति देता है। जैसे छोटा बच्चा चल नहीं पाता, तो माँ उसको गोद में उठा लेती है और माँ की गोद में बैठकर फिर वह यात्रा करता है। उसके पास शक्ति कम है, इसलिए तब माँ उसकी सहायता करती है, और उसका काम पूरा हो जाता है। ऐसे ही ईश्वर आत्मा को मोक्ष में देखने के लिए, सुनने के लिए, सारे काम करने के लिए अपनी शक्ति दे देता है।

शंका– जब संसार प्रलय–अवस्था में चला जाता है, तब परमात्मा कुछ करता है या निठल्ला बैठा रहता है?

समाधान– जब संसार प्रलय अवस्था में चला जाता है तो ईश्वर निठल्ला नहीं बैठता। जो आत्मायें मुक्ति में जा चुकी हैं, उनको आनंद देता रहता है। उसका यह काम होता है। बाकी जो बद्ध आत्माएं हैं, वे प्रलय अवस्था में पड़ी रहती हैं, सोती रहती हैं, विश्राम करती है। ईश्वर बिल्कुल निठल्ला नहीं होता, वो काम करता रहता है। उस समय उसका थोड़ा काम तो घट ही जाता है, क्योंकि तब उसको सृष्टि चलाने का भार नहीं रहता। लेकिन आप ऐसा मत समझिये, कि उसकी मुसीबत छूट गई। इतने दिन छुट्टी हो गई। दरअसल, ऐसा नहीं है। वो सृष्टि चला दे, तब भी उसे भार नहीं पड़ता। सहज स्वभाव से बड़ी आसानी से वो सृष्टि का संचालन करता है। जैसे हम आँखें झपकाते रहते हैं, दिन भर आँख झपकाते हैं, कोई भार लगता है क्या ? पता भी नहीं चलता। तो भगवान के लिए सृष्टि का संचालन करना ऐसा ही काम है। जैसे हम श्वास–प्रश्वास लेते–छोड़ते हैं। कोई भारी काम नहीं है। इसीलिए भगवान को कोई फर्क नहीं पड़ता। सृष्टि हो या प्रलय हो, उसको कोई भार नहीं लगता। बस इतना है कि सृष्टि चलती है, जीवात्मा को कर्मफल देता है, सृष्टि की व्यवस्था करता रहता है। और अगर प्रलय हो जाती है तो मुक्त आत्माओं को आनंद देता रहता है। उसको कोई फर्क नहीं पड़ता। सृष्टि या प्रलय होने पर हमको फर्क पड़ता है।

शंका– हमारे निवास स्थान पर मुण्डकोपनिषद् का एक श्लोक लिखा है, जिसमें ओ३म् को धनुष, आत्मा को तीर और ब्रह्म को लक्ष्य बताया गया है। कृपया इसे स्पष्ट करें।

समाधान– दृष्टांत है– मान लीजिए, एक व्यक्ति धनुष बाण ले करके तीर को लकड़ी के खम्भे में ठोंकना चाहता है। उसकी ऐसी इच्छा है। जैसे बाहर से एक दृष्टांत समझाने के लिए बताया, कि एक लकड़ी का खम्भा है, वो है– लक्ष्य। और उस लकड़ी के खम्भे में क्या फेंकना है ? तीर। और फेंकने के लिए साधन क्या है ? धनुष। ठीक है तो तीन बात हो गईं। एक तीर, एक धनुष और एक लक्ष्य। ऐसे ही ब्रह्म लक्ष्य है, ह्म। प्रणव = (ओ३म्) धनुष के समान है। – आत्मा जो है, वो तो तीर के समान है। जैसे धनुष में तीर को देखते हैं, और फिर धनुष की रस्सी खींच करके, और तीर को छोड़ करके लक्ष्य तक पहुंचा देते हैं। ऐसे ही ओ३म् है– धनुष, धनुष के समान। और जो आत्मा है, वो तीर (ऐरो) के समान है। और ब्रह्म जो है, वो टारगेट है, वो लक्ष्य है। तो ओ३म् के मंत्र से आत्मा का तीर छोड़ो और ब्रह्म में फिट कर दो। यह उस वचन का अभिप्राय है।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

पिछले अंक से आगे

चरित्र निर्माण हेतु ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना मंत्रों पर विचार

● सरोज आर्या वर्मा

प्रार्थना के पूर्व पुरुषार्थ अनिवार्य है

प्रश्न है कि क्या प्रार्थना करने से दुरित दूर हो जायेंगे? जैसे पूर्व में कह आये हैं कि पुरुषार्थ के बिना कोई प्रार्थना स्वीकार नहीं हो सकती है क्योंकि परमेश्वर भी उनकी ही सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं। महर्षि दयानन्द लिखते हैं **अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिये परमेश्वर वा किसी सामर्थ्य वाले मनुष्य के सहाय लेने को प्रार्थना कहते हैं।'** (आर्योद्देश्यरत्नमाला, 24)

परि ते दूडभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः। येन रक्षसि दाशुषः।। (यजु. 3/36)

मनुष्यों को, सबके रक्षक परमेश्वर की और विज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रार्थना और पुरुषार्थ नित्य करना चाहिए। जिससे रक्षित होते हुए हम लोग दुष्ट विद्या और अधर्म आदि दोषों को त्यागकर तथा श्रेष्ठ विद्या और धर्म आदि शुभ गुणों को प्राप्त करके सदा सुखी होवें।

महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं परमेश्वर का एक नाम 'मित्र' है। **'इन्द्रस्य युज्यः सखा'** अर्थात् वह परमेश्वर जीवों का सच्चा सखा है। परन्तु साथ यह भी कहा है **'इन्द्र इच्चरत सखा'** अर्थात् परमेश्वर परिश्रम करने वालों का सहायक सखा है। महर्षि का स्पष्ट आदेश है कि **'अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त'** अर्थात् जिस कार्य के लिये हम सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से वा सामर्थ्यवान् मनुष्य से सहायता मांग रहे हैं उसके लिये पहली अनिवार्य शर्त यही है कि हम पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त ही सहायता मांगने के अधिकारी हैं।

दुर्गुण दूर करने का उत्तम साधन है वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय

स्वाध्याय शब्द स्व+अध्याय से बना है। स्व का अर्थ है– अपना और अध्याय का अर्थ है– अध्ययन करना। अर्थात् अपने आप का अध्ययन करना या स्वयं का निरीक्षण करना। अपने जीवन में प्रत्येक कार्य को विचार करके करना, एवं कृत कर्मों का अवलोकन/निरीक्षण करना। इससे व्यक्ति बुरे कर्मों से दूर रहता है और सन्मार्ग की ओर उन्मुख होता है। वेद में कहा है–

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः। निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः।। (यजु. 1/7)

हे मनुष्य! तू आत्म निरीक्षण कर अपने अन्दर की राक्षसी वृत्तियों को दग्ध कर दे, स्वार्थवृत्तियों को भस्म कर दे, राक्षसी वृत्तियों को जलाकर निःशेष कर दे– समाप्त कर दे।

मानव का स्वभाव है दूसरों के दोषों को देखना और अपने न देखना। स्वामी श्रद्धानन्द विद्यार्थियों को उपदेश दिया करते थे– दूसरों की निंदा करने में मत लगे रहो, अपनी ओर देखना आरम्भ करो और दोषों को निकालकर सद्गुणों को अपनाओ। महापुरुषों ने भी अपने दोषों और दूसरों के गुणों को देखा, तभी वे महान् बन पाये। हमें भी अपने दोषों को दूर करना चाहिए। जैसे संत कबीर कहते हैं–

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलया कोय।
जो दिल खोजा आपना मुझसे बुरा न कोय।।

अतः स्वयं के दोषों को दूर करने के लिये स्वयं का निरीक्षण आवश्यक है।

मानव का सबसे बड़ा शत्रु अज्ञान है। अज्ञान सबसे निकृष्ट प्रवृत्ति है। इसके कारण आत्मा काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार आदि दुर्गुणों में फँसकर नष्ट हो जाता है। मनुष्य को आत्म निरीक्षण करके देखना चाहिए कि कहीं उसमें उल्लू के समान मोहवृत्ति, भेड़िये के समान क्रोधवृत्ति, कुत्ते के समान ईर्ष्यावृत्ति, चक्रवाक के समान कामवृत्ति, गरुड़ की चाल के समान मदवृत्ति तथा गिद्ध जैसी लोभवृत्ति तो वास नहीं कर रही है। यदि कर रही हो तो उसे ऐसे नष्ट कर देना चाहिए कि जैसे पत्थर से किसी वस्तु को चूर–चूर कर दिया जाता है।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुतकोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र।। (अथर्व. 8/4/22) (ऋ.7/104/22)

मानव सतत आत्म–निरीक्षण करके यह देखता रहे कि कहीं मेरी दृष्टि में दोष–पक्षपातादि दोष, हृदय में दोष, अशिष्टता का दोष, कठोरता और निष्ठुरता आदि दोष, मन में चंचलता, असंयम आदि दोष तो नहीं आ गये है। यदि आ गये हों तो उनको दूर करने की प्रार्थना करनी चाहिए।

स्वाध्याय का दूसरा साधारण अर्थ है सद्ग्रंथों का अध्ययन करना। स्वाध्याय से यद्यपि सद्ग्रंथों या उत्तम ग्रंथों का अभिप्राय है किन्तु महर्षि मनु वेदाध्ययन को स्वाध्याय का सर्वोत्तम साधन समझते हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि में–

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विम। (मनु. 2/6)

अर्थात् वेद समस्त धर्मों के मूलाधार हैं।

स्वाध्याय से अविद्यारूपी अन्धकार दूर होकर ज्ञानरूपी प्रकाश होता है। हमारे ऋषि मुनियों ने स्वाध्याय को जीवन का अनिवार्य कर्म बताया है। यह आजीवन चलने वाली सतत् क्रिया है, जिसे परमतप की संज्ञा दी गई है। किसी अवसर पर या किसी कारणवश अवकाश मनाया जाता है किन्तु स्वाध्याय से अवकाश नहीं किया जा सकता, यह उपदेश देकर महर्षि मनु ने स्वाध्याय के महत्त्व को दर्शाया है– **'स्वाध्याय में बाधक सभी कार्यों को छोड़ देवें, किन्तु स्वाध्याय को कमी न छोड़ें।'**

(मनु. 4/17)

सभी उत्तम कर्मों में स्वाध्याय को सर्वोत्तम कर्म कहा है। गुरुकुल से जब

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

वैदिक-काल में गोमांस नहीं खाया जाता था

● महात्मा चैतन्यमुनि

आज भी कुछ लोगों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है कि प्राचीन काल में गोमांस आदि खाने का प्रचलन था तथा उन्होंने यहाँ तक कहने की धृष्टता की है कि वैदिक-काल में ऋषिमुनि तक भी गोमांस खाते थे और सोम नाम का मादक द्रव्य पीते थे। यह देख कर अत्यन्त दुःख होता है कि स्वयं को बुद्धिजीवी कहलाने वाले कुछ तथाकथित विद्वान भी प्रकार की अनर्गल बातों का प्रचार करते हैं। वास्तव में ऐसा दुःसाहस अज्ञानता के कारण ही किया जाता है। जिन लोगों ने अपनी संस्कृति और ग्रन्थों का गहन अध्ययन नहीं किया है तथा किसी न किसी प्रकार प्राचीन भारतीय संस्कृति को हेय और हीन बताने का प्रयास करना ही जिनका लक्ष्य है, ऐसे लोग ही इस प्रकार के जुमले उठाया करते हैं। अपनी इन मान्यताओं का आधार वे पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर ऐसे ग्रन्थों को बनाते हैं जो या तो प्रक्षिप्त अंश हैं या फिर उन जैसे ही अज्ञानी लोगों द्वारा रचे गए हैं। वेद आदि ग्रंथों के भी तथाकथित विद्वानों ने ऐसे भाष्य कर दिए कि कुछ लोगों को इस प्रकार की कुत्सित भावनाओं को उठाने का अवसर मिल जाता है क्योंकि उनका स्वयं का चिन्तन तो होता नही है। वेदों के कर्मकाण्ड और रूढ़िवाद का सहारा लेकर जो भाष्य कुछ विद्वानों ने किया तथा उसी के आधार पर और विकासवाद को सत्य सिद्ध करने एवं भारतीय संस्कृति को हेय बताने के उद्देश्य से पाश्चात्य लोगों ने जो कुछ लिखा उसी को तथा कुछ प्रक्षिप्त अंशों को लेकर ऐसी बातें कही जाती हैं जबकि वेदादि ग्रन्थों में इस प्रकार का कोई विधान नहीं है। इस बात पर भी विचार करना अपेक्षित है कि कभी कालान्तर में किन्हीं लोगों ने इस प्रकार के अभक्ष्य पदार्थों का सेवन किया भी हो तो क्या उसे सबके लिए उपयोगी और प्रमाणित मान लिया जाए? हमें वेदों की मूल मानवतावादी विचारधारा को लेकर चलने की आवश्यकता है जिसके आधार पर व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति हो सके तथा एक सार्वभौमिक मानव धर्म की स्थापना हो सके। हमारे लिए पूर्वजों की अच्छी बातें ही अनुकरणीय और आदर्श होनी चाहिए और उन्हीं का प्रचार प्रसार करने की जरूरत है। यदि ऐसी भावना व्यक्ति के मन में होगी तो वह केवल सतही बातों की चर्चा नहीं करेगा बल्कि यदि उसे ऐसा कहीं लगता है तो वह सत्य और असत्य का निर्णय करने के लिए पूरी गवेषणा करेगा। इतिहास लेखक का उद्देश्य तह तक पहुँच कर सत्य का उद्घाटन करना ही होना चाहिए। सत्य क्या है इसका थोड़ा सा प्रकटीकरण हम आगे दे रहे हैं।

यहाँ हम यह बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वेदों के बारे में भाष्यकारों से जो मुख्य रूप से भूल हुई है उसी के कारण वेदों के ऊपर इस प्रकार के मनमाने आरोप लगाए जाते रहे हैं। वेद परमात्मा द्वारा प्रदत्त सार्वभौमिक तथा निर्भ्रान्त ज्ञान है। इसलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने साफ शब्दों में कहा है कि या तो वेद परमात्मा द्वारा प्रदत्त ज्ञान नहीं है और यदि परमात्मा द्वारा दिया गया ज्ञान है तो वेद में कोई बात ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के विपरीत नहीं हो सकती है। इसलिए वेद मन्त्रों का ऐसा अर्थ नहीं किया जा सकता जो परमात्मा के सत्य, न्याय, निराकार, दया, पवित्रता और सर्वज्ञता आदि गुणों के विपरीत हो। वेद में इस प्रकार की कोई बात भी नहीं हो सकती है जो सृष्टि-नियम के विरूद्ध हो। वेद मन्त्रों के अर्थ ऐसे भी नहीं हो सकते हैं जो व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति में किसी प्रकार से बाधक हो। वेद परमात्मा का दिया हुआ नित्य ज्ञान है इसलिए उसमें किसी प्रकार का अनित्य इतिहास आदि नहीं हो सकता है। वेद मन्त्र पहले है तथा उसका विनियोग बाद में, इसलिए विनियोग के आधार पर मन्त्रों का अर्थ नहीं किया जाना चाहिए बल्कि मन्त्र का स्वतन्त्र और स्वाभाविक अर्थ किया जाना ही अपेक्षित है। वेद मन्त्रों के व्याख्याता को संस्कृत का ज्ञाता तो होना ही चाहिए मगर साथ ही उसे पूर्व प्रसंग का भी ध्यान रखना चाहिए। मन्त्रों में आने वाले इन्द्र आदि शब्दों का अर्थ उनके विशेषणों के आधार पर निश्चित किया जाना चाहिए न कि किसी काल्पनिक देवता के आधार पर। वेद का व्याख्याता तपस्वी, संयमी और परमात्मा के प्रति पूर्णरूप से श्रद्धालु होना चाहिए। वेद को पूरी तरह समझने के लिए वेद के शब्दों को रूढ़ि न मानकर यौगिक माना जाए तभी उसमें निहित ज्ञान-विज्ञान के बारे में हमें जानकारी मिल सकती है। हम देखते हैं कि इन समस्त विशेषताओं को लेकर यदि किसी ने वेद पर अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया है तो वे महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ही थे। स्थापनाएँ उनकी अपनी कल्पना-प्रसूत नहीं थीं बल्कि अपने ग्रन्थ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में वे यास्क का उद्धरण देते हुए लिखते हैं कि ऋचाओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-परोक्ष, प्रत्यक्ष और अध्यात्मपरक इसलिए तदनुसार ही उनके अर्थ भी किए जाने चाहिए। यदि इस प्रकार से वेद को समझा जाता तो किसी को आक्षेप लगाने का अवसर ही प्राप्त नहीं हो सकता।

वेद पर कलम चलाने वालों ने उपरोक्त बातों को ध्यान में नहीं रखा इसीलिए उन्होंने **उक्ष्णो हि मे पंचदश साकं पचन्ति विंशतिम्।.... इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।** ऋग्वेद(10-86-14) वेद मन्त्र का अनर्थ करते हुए लिखा कि मेरे लिए इन्द्राणी द्वारा प्रेरित यज्ञकर्त्ता लोग पन्द्रह-बीस बैल मारकर पकाते हैं, जिन्हें खाकर मैं मोटा होता हूँ। वे मेरी कुक्षिओं को सोम से भी भरते हैं। इसी तर्ज पर पाश्चात्य लोगों ने भी यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि वैदिक लोग नशीला पेय पीते थे तथा मांस आदि का भक्षण करते थे। विस्तार भय से हम यहाँ पर उन प्रसंगों का अधिक उल्लेख नहीं करना चाहते हैं कि वेद या अन्य आर्ष ग्रन्थों पर अविवेकी लोगों ने किस प्रकार के आरोप लगाए हैं। हम तो ऋग्वेद के मन्त्रों में **'शुनःशेप'** शब्द को लेकर नरबलि प्रथा की चर्चा करते हैं मगर निरूक्त के आधार पर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने वेदों के समस्त शब्दों को यौगिक बताया है। तदनुसार **'शुनःशेप'** का अर्थ 'अत्यन्त ज्ञान वाले विद्या व्यवहार के लिए प्राप्त परमेश्वर वा सूर्य' अर्थ बनता है अर्थात् हम लोग उस ईश्वर की उपासना और सूर्य का उपयोग यथावत् किया करें। यहाँ पर कहीं भी नरबलि आदि का उल्लेख नहीं है। अज्ञान और अविवेक के कारण लोगों ने वेद पर इस प्रकार के मिथ्यारोप लगाने की कुचेष्टा की है। इसी प्रकार यौगिकवाद को न समझने के कारण गोमेध, अश्वमेध तथा नरमेध आदि यज्ञों के भी लोगों ने मनमाने अर्थ किए हैं।

शतपथ ब्रा.(1-7-45) में कहा है-**'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'** अर्थात् यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है फिर भी यज्ञों में गौ, अश्व, बकरे और नरबलि की कल्पनाएँ कैसे कर दी यह सोच कर ही आश्चर्य होता है। वास्तविकता यह है कि यज्ञ के बारे में जो भी शब्द आए हैं उन में से किसी का भी अर्थ पशुवध या हिंसा नहीं है बल्कि 'अध्वर' शब्द अहिंसा का ही सूचक है। यज्ञ कराने के लिए जिन लोगों की नियुक्ति की जाती है उनमें से एक का नाम 'अध्वर्यु' है जो यज्ञ को कायिक, वाचिक और मानसिक प्रकार की हिंसाओं से बचाता है। यज्ञ में गौ वध की कल्पना करना ही अप्रासंगिक और निन्दनीय है क्योंकि गाय को तो 'अघ्न्या' कहा गया अर्थात् किसी भी हालत में न मारने योग्य। इसी प्रकार अश्वमेध यज्ञ के बारे में भी अज्ञानतावश ऐसा कह दिया जाता है कि इसमें अश्व की बलि बिल्कुल ही नहीं कहीं गई है। फिर भी इस प्रकार का कर्मकाण्ड प्रधान अति अश्लील भाष्य कुछ भाष्यकारों द्वारा किया गया जो किसी भी सभ्य समाज को मान्य नहीं हो सकता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी अपने ग्रन्थ ऋ. भा. भू. में शतपथ ब्रा. का प्रमाण देते हुए कहते हैं **-राष्ट्र वा अश्वमेधः'** (13-1-6-3). इस आधार पर वे आगे लिखते है **'राष्ट्र पालनमेव क्षत्रियाणाम् अश्वमेधाख्यो यज्ञो भवति, नाश्वं हत्वा तदङ्गान होमकरणं चेति।** अर्थात् राष्ट्र का पालन करना ही क्षत्रियों का अश्वमेध यज्ञ है, घोड़े को मारकर उसके अंगों को होम करना नहीं। महर्षि जी सत्यार्थप्रकाश में अश्वमेध, गोमेध और नरमेध आदि के बारे में लिखते हैं-**राष्ट्र वा अश्वमेधः।** (शत.13-1-6-3), **अन्नं हि गौः।** (शत.4-3-25), **अग्निर्वा अश्वः।** (शत.3-6-2-5), **आज्यं मेधः।** (शत. 13-3-6-2) घोड़े गाय आदि पशु तथा मनुष्य मारकर होम करना कहीं नहीं लिखा। केवल वाममार्गियों के ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ लिखा है। किन्तु यह भी बात वाममार्गियों ने चलाई और जहाँ-जहाँ लेख है, वहाँ-वहाँ भी वाममार्गियों ने प्रक्षेप किया है। देखो, राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि का देने वाला यजमान और अग्नि में भी घी आदि का होम करना 'अश्वमेध'। अन्न, इन्द्रियाँ, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना 'गोमेध', जब मनुष्य मर जाय तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना 'नरमेध' कहलाता है। गौ आदि शब्दों के रूढ़ अर्थों को आधार लेकर वेद मन्त्रों के किए अर्थों का कुपरिणाम हमारे सामने है। इसी प्रकार के अन्य और भी अनेक शब्द हैं जिनके बारे में लोगों को बहुत भ्रान्तियाँ हैं।

वृषभ शब्द का अर्थ भी केवल बैल करना संगत नहीं है। अथर्व.(4-11-1) में अनड्वान् के रूप में चार पैरों वाले एक ऐसे बैल का वर्णन किया गया है जो इन्द्र का है तथा उसके वे पैर वास्तव में वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ और अद्वैत हैं। छान्दोग्य उप. के अनुसार ये चार पाद् प्रकाशमान, अनन्दावान्, ज्योतिष्मान और आयतवान् बताए गए हैं। यजुर्वेद (17-91) में एक अद्भुत वृषभ का वर्णन आया है, जिसके चार सींग, तीन पैर, दो सिर और सात हाथ हैं। वह तीन खूँटों से बँधा हुआ डकरा रहा है। वह महान देव है, जो सब व्यक्तियों के अन्दर आकर प्रविष्ट है। इस वृषभ का उल्लेख ऋग्वेद(4-58-3) में भी है। निरुक्त के अनुसार यह वृषभ यज्ञ है। चार वेद ही उसके चार सींग हैं, प्रातः मध्यान्ह और सायं के तीन सवन ही तीन पैर हैं। प्रायणीय तथा उदयनीय उसके दो सिर हैं। गायत्र्यादि सात छन्द ही हाथ हैं। वह यज्ञ मन्त्र, ब्राहमण तथा कल्प इन तीन खूँटों से बँधा हुआ है। यज्ञ में होने वाला मन्त्र पाठ ही उस वृषभ का डकराना है। पतंजलि जी महाराज के अनुसार यह वृषभ शब्द है। शब्द के चार भेद नाम, आख्यात, उपसर्ग और

निपात ही उसके चार सींग हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान काल ही तीन पैर हैं। सुप् और तिङ् दो सिर हैं। सात विभक्तियाँ सात हाथ हैं। उरस्, कण्ठ और सिर इन तीन स्थानों में बँधा हुआ वह बोल रहा है....। ऋग्वेद (09–86–43) में वृषभ पाक का वर्णन है जिसे अज्ञानी लोगों ने बैल के मांस आदि से जोड़ने का प्रयास किया है जबकि यहाँ वृषभ का भाव धाना(यव) तथा सोमवल्ली है। यहाँ पर यह बात भी उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर ही इन्द्र का भोज्य धाना(भूने जौ) करंभ(दही मिश्रित सत्तू) और पुरोडास है तथा पेय सोमरस है–बैल का मांस नहीं। वेद में (ऋ08–31–1,4) इन्द्र को पुरोडास और परिपक्व सोम भेंट करने का ही उल्लेख है, बैल खिलाने का नहीं। राजनिघण्टु में वृषभ शब्द का प्रयोग काकड़ासिंगी नामक औषधि के लिए आया है। कुछ तथाकथित विद्वानों ने आर्य लोगों द्वारा भैंस आदि का मांस खाने का उल्लेख भी किया है। इसके लिए वे ऋग्वेद(05–29–7) के मन्त्र को उद्धृत करते हैं जहाँ..... **महिषा त्री शतानि**, आया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने इस मन्त्र में आए महिषा शब्द का अर्थ 'बड़ा' किया है। निघण्टु के अनुसार भी इसका अर्थ महान् या बड़ा ही है। इसी प्रकार अन्य अनेक प्रकार के आक्षेप समय–समय पर वेद के बारे में किए जाते रहे हैं मगर इसका कारण वेद की मूल भावनाओं को न समझ पाना, यौगिकवाद की अवहेलना, निरूक्त आदि का ज्ञान न होना तथा पूर्वापर प्रसंग आदि का ध्यान न रखना ही मुख्यतः है।

वेद में गाय–बैल, भैंस, बकरे, घोड़े आदि के मांस खाने की बात तो दूर रही जीव मात्र के मांसभक्षण का कड़े शब्दों में विरोध किया गया है क्योंकि मांस मनुष्य का भोजन है ही नहीं इसलिए मांसाहारी को कड़े से कड़ा दण्ड देने का आदेश है। यजुर्वेद में आता है–**पशून् पाहि, गां मा हिंसीः अजां मा हिंसीः**....अर्थात् पशुओं की रक्षा करो, गाय को मत मारो, बकरी को मत मारो, भेड़ को मत मारो, इस मनुष्य और द्विपद पक्षियों को मत मारो, एक खुर वाले घोड़े, गधे को मत मारो और किसी भी प्राणी को मत मारो। वेद में अन्य भी अनेक ऐसे मन्त्र हैं जिनमें प्राणिमात्र के प्रति मित्र की दृष्टि रखने की बात कही गई है–**दृते दृह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि**... अब हम गोमांस के बारे में विशेष रूप से चर्चा करते हैं क्योंकि कुछ अल्पज्ञ लोगों के द्वारा समय–समय पर इस प्रकार के भी आक्षेप लगाए जाते रहे हैं कि पुरातन काल में आर्य लोग ही नहीं बल्कि ऋषि–मुनि भी गोमांस खाते थे तथा इसका उल्लेख वेदों के अन्दर भी किया गया है जबकि ऋग्वेद में (1–164–27,40,4–1–6,5–83–8,7–68–8,9 8–69–2,9–93–3, 10–87–16,9–1–9,–1–37–5,7–69–8,9–80–2,9–93–3,10–46–3,10–60–11,10–102–7) तथा अथर्ववेद में (3–30–1) गाय को 'अध्न्या' अर्थात् न मारने योग्य कहा गया है। पूर्वाग्रही लोगों ने जहाँ भी गौ शब्द आया उसे एकदम गोवध के साथ जोड़ दिया जबकि गौ शब्द के अनेकानेक अर्थ हैं–**गौरिति पृथिव्या....सन्देहा विद्यन्ते** (नि02–1) यहाँ पर कहा गया है कि इस पृथिवी का नाम गौ है क्योंकि यह दूर तक फैली हुई है। पशु विशेष का नाम भी गौ शब्द का प्रयोग होता है अर्थात् विना तद्धित प्रत्यय के प्रयोग के तद्धितार्थ का बोध वैदिक शब्दों से होता है। यास्क जी ने यहाँ उदाहरण दिया है–**'गोभिः श्रीणीत मत्सरम्'** यहाँ यदि सीधा अर्थ करेगें तो अर्थ होगा गाय के साथ सोम को पकाओ परन्तु यास्क का इस स्थल पर स्पष्ट कथन है–**'पयसः'** अर्थात् **गोभिः** का अर्थ यहाँ **'गोपयोभिः यानि** 'गाय के दूध के साथ होगा। 'इस प्रकार **'अध्यासते गवि'** का अर्थ गाय के ऊपर बैठते हैं यह नहीं होगा अपितु यहाँ गौ शब्द का अर्थ गोचर्म होगा। यास्कमुनि के अनुसार धनुष की प्रत्यंचा को भी गौ कहा जाता है। सूर्य को भी गौ कहते हैं तथा सूर्य की एक किरण जो चन्द्रमा में जाकर प्रकाशित होती है उसे भी गौ कहा जाता है। गौ के अर्थ और भी बहुत से हैं अतः प्रसंग के अनुकूल ही शब्द का अर्थ किया जाना चाहिए। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने गोवध का निषेध करते हुए गाय की बहुत अधिक उपयोगिता बताई है। इस सम्बन्ध में वे अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखते है'...एक गाय से लाख मनुष्यों का पालन हो सकता है। उसको मार के मांस से 80 पुरुष तृप्त हो सकते हैं फिर दूध और पशुओं की उत्पत्ति का मूल्य ही नष्ट हो जाता है जो बैल आर्यावर्त्त में पाँच रूपयों में आता था सो अब तीस से भी नहीं आता और कुछ गाँव और नगर के पास पशुओं के चरने के वास्ते उसकी सीमा में भूमि में भूमि रखनी चाहिए जिसमें कि वे पशु चरें। जैसी दुग्धादि से मनुष्य शरीर की पुष्टि होती है वैसी सूखे अन्नादिकों से नहीं होती और बुद्धि भी नहीं बढ़ती। इससे राजा को यह बात अवश्य करनी चाहिए कि जिन पशुओं से मनुष्य के व्यवहार सिद्ध होते हैं और उपकार होते हैं वे कभी न मारे जाएँ.....'गाय की अत्यधिक उपयोगिता को देखते हुए ही वेद में गौ हत्यारों के लिए कठोर दण्ड का विधान किया गया है। ऋग्वेद(10–87–16) में कहा गया है कि जो राक्षस मनुष्य का, घोड़े का और गाय का मांस खाता हो तथा दूध की चोरी करता हो, उसके सिर को कुचल देना चाहिए। अथर्व.(8–3–16) में राजा को आदेश दिया गया है कि यदि प्रजा पीड़क लोग गौ आदि पशुओं को विष देकर मार डालें और दुष्ट आचरण वाले लोग गाय को काटें, तब सबका प्रेरक राजा इनका सर्वस्व लेकर अपने राज्य से बाहर निकाल दे। यजुर्वेद (13–49) में राजा को आदेश है कि वह कानून बनाकर गौओं, बैलों, भैंसों तथा बछड़ों आदि का वध बन्द करा दे। इसके बावजूद जो गौ की हत्या करे उसे यजुर्वेद (30–18) मृत्यु दण्ड दिया जाए। अथर्ववेद (1–16–4) में गौ हत्यारे को सीसे की गोली से उड़ा देने का विधान किया गया है।

जैसा कि हमने ऊपर भी कहा है कि वास्तव में अपनी अल्पज्ञता के कारण ही लोगों ने वेद के ऊपर इस प्रकार के अनर्गल आक्षेप लगाए हैं अन्यथा सही ढंग से अर्थात् वेदों की मानवीय विचारधारा, सार्वभौमिकता, असांप्रदायिकता, पूर्वा पर प्रसंग, भाषा विज्ञान का ज्ञान रखने वाला व्यक्ति तो किसी कवि के भावों को ही समझने में असमर्थ होता है और वेद तो उस महान कवि परमात्मा की ही रचना है इसलिए इसमें छिपे रहस्यों को समझने के लिए किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह या अल्पज्ञता की काराओं को पार करना अपेक्षित है। महामना पण्डित रघुनन्दन शर्मा जी द्वारा लिखित कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत हैं। 'हठयोग प्रदीपिका में लिखा है–**गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिवेदमरवारूणीम्। कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातकाः।।** अर्थात् जो नित्य गोमांस खाता है और मदिरा पीता है, वही कुलीन है, अन्य मनुष्य कुलघाती है। लेखक की यह बात कितनी अधिक अविश्वसनीय तथा पाप प्रतीत होती है मगर अगले ही श्लोक में इसके भाव को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– **गोशब्देनोदिता जिह्पा तत्प्रवेशो हि तालुनि। गोमांसभक्षणम् तत्तु महापातमनाशनम्।।** अर्थात् योगीपुरुष जिह्वा को लौटाकर तालू में प्रवेश करता है, उसी को गोमांस भक्षण कहा गया है। गो जिव्हा मांस की ही होती है। इसलिए जिव्हा को गोमांस के नाम से कहा गया है। यदि दूसरे श्लोक में यह बात स्पष्ट न की होती तो गोमांस भक्षण की विधि स्पष्ट रूप से पाई जाती। किन्तु लेखक ने यह समझकर कि लोगों को भ्रम न हो जाए, तुरन्त ही बात को स्पष्ट कर दिया है। इसी तरह वेदों में भी ऐसे सन्दिग्ध द्व्यर्थक शब्दों का समाधान और स्पष्टीकरण परमात्मा ने कर दिया है। अथर्ववेद (18–4–32) में आया है कि धान ही धेनु है और तिल ही उनके बछड़े हैं। ...अथर्व.(18–4–34) में इन धेनु रूपी धानों का विशद् विवेचन भी किया गया है। अथर्व.(11–3–05,11–3–07) में आया है कि चावल के कण ही अश्व हैं, चावल ही गौ है, भूसी ही मशक है, चावलों का जो श्याम भाग है वही मांस है और जो लाल अंश है वही रूधिर है। इन प्रमाणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हवन प्रकरण में जहाँ–जहाँ अश्व, गौ, अजा, मांस, अस्थि और मज्जा आदि शब्द आते हैं, उनमें अन्न का ही ग्रहण है, पशु और उनके अवयवों का नहीं।

महर्षि दयानन्द धाम
महादेव, सुन्दर नगर
जिला मण्डी, हि. प्र.

डी.ए.वी.पश्चिमी पटेल नगर में महर्षि दयानन्द सरस्वती को दी श्रद्धांजलि

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल पश्चिमी पटेल नगर में दिनांक महर्षि दयानन्द श्रद्धांजलि अर्पित करने हेतु विशाल हवन का आयोजन किया गया। प्रधानाचार्या रश्मि गुप्ता जी मुख्य यजमान थीं। पाठशाला के प्रांगण में कक्षा तीन से सातवीं तक के सब बच्चों तथा पाठशाला की अध्यापिकाओं ने इस हवन में भाग लिया।

हवन से पूर्व शास्त्री जी ने बच्चों को दयानन्द जी के जीवन की मुख्य बाते बताईं तथा बताया कि वह किस प्रकार छोटी सी आयु में घर त्याग कर सत्य की खोज में तथा मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की खोज में चले गये। उन्होंने अपना पूरा जीवन वेदों के प्रचार प्रसार में अर्पण कर दिया। पूरे विश्व को आर्य बनाने का दृढ़ निश्चय करके आजीवन तन–मन से आर्य समाज की सेवा में लगे रहे। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द जी को हमारा हृदय की गहराई से शत–शत–नमन।

50 वर्ष पहले भारत–पाक युद्ध के मार्मिक संस्मरण

● स्वामी प्रवासानन्द सरस्वती, वैदिक धर्म प्रचारक

भारत–नेपाल परिक्रमावासी, 90 वर्षीय युवा मैं (पूर्व नाम राजपाल आर्य) 50 साल तक साईकिल यात्री, यात्रा करता हुआ, यात्रा के दूसरे साल जोधपुर गया। सन् 1965 के भारत –पाक युद्ध का समय था, गुलाब सागर, आर्यसमाज मन्दिर में निवास था, राजस्थान के व्यापारी दूर–दूर तक भारत में अलग–अलग स्थानों पर व्यवसाय में बरसों से लगे थे। क्षत्रिय सेना में थे ही किसी अंश में, पर किसान, मजदूरों को तो स्थानीय ही रहना था, सो रह रहे थे। युद्ध के समय जनता तन–मन–धन से राष्ट्रीय रक्षाकोष में आर्थिक सहयोग कर रही थी। उस समय सम्मानीय लाल बहादुर शास्त्री जी भारत के प्रधानमंत्री एवं शिवचरण माथुर राजस्थान के मुख्यमंत्री थे।

युद्ध चल रहा था, जन–जीवन प्रभावित था, पैदल, वायु, समुदी सेवा दुश्मन को मुँह तोड़ उत्तर दे रही थी। शहरों में जनरक्षा के लिए सड़कों पर खाईयाँ लम्बाई में हवाई हमले से बचाव के लिए खुदी थी। हमले के समय अलार्म बजते थे जो खतरे का संकेत होते, खतरा टल जाने पर सूचना भी मिलती थी। इसी तरह सेना ने बंकर (गुफाएँ) भी बनाये थे आत्म रक्षा के लिए। हवाई हमला होने पर अलार्म सुन लोग दिन या रात में भी घर से बाहर खाईयों में उतर जाते आत्म रक्षा के लिए। बरसते बमों को देखने के लिए लोग घर की छतों पर भी किसी अंश में चढ़ जाते जिनमें महिलाएँ और बच्चे भी होते। हमलावरों का निशाना सैनिक ठिकानों में ही अधिकांशतः होता। युद्ध भी चल रहा था, सामान्य जन–जीवन भी। बाजार खुलते, खरीददारी भी होती, खेतो में हल भी चलते रहते, कारखाने भी। ऐसा लगता था मानों स्थिति सामान्य दिनों जैसी ही है। शहर की जनता रात में सो रही थी। अलार्म बजा, सुनकर एकदम से लोग जागे। भयंकर अंधेरा ब्लेक–आउट रहता था। रात में अंधेरा ही अंधेरा, जमीन पर एकदम सन्नाटा, कहीं कोई हलचल नहीं इसलिए कि हमारी वायुसेना दुश्मन का पीछा करती रहती उन्हें वापस खदेड़ने के लिए।

एक घर भोजन के लिए गया, एक अविवाहित युवती कन्या से मैंने पूछा– आप लोगों को यहाँ डर नहीं लगता? शहर छोड़कर सुरक्षित स्थान पर क्यों नहीं चले जाते? उसने कहा था–राष्ट्रकवि प्रदीप जी के शब्दों में –'ये है अपना राजपूताना, हम क्षत्रिय है मौत के डर से हम भागा नहीं करते, मरेंगे तो युद्ध भूमि में ही, हमारे देश की तीनों सेनाएँ हमारी रक्षा कर रही है। शास्त्री जी हमारे जी–जान से देश की रक्षा में लगे है, भी, मुख्यमंत्री जी भी, भागकर कहाँ जाना, खतरा समस्त देशभर में है, तो यहीं पर आसमान से बमरूपी अंगारें बरसते रहते है, कोई बात नहीं। जीवन–मरण जो भी हो, यहीं होगा'। इतना कह वह साहसी बाला चुप हो गई। जिस श्रद्धा–प्रेम से आतिथ्य रहा, स्मरणीय बन गया। धन्य है भारत–राजस्थान। भारत माता की जय।

अब आप बीती, रात का समय अलार्म बजा, गहरी नींद में सोया था, सुधबुध खो कर। अंधेरे में हलचल हुई। नागरिकों के साथ में कहाँ हूँ। इन्दौर में, जहाँ कपड़े की मिलों में आरम्भ और अन्त में घण्टियाँ बजती रहती थी, पर पर यह क्या? लोग कहाँ जा रहे है? इस घोर अंधकार में, स्थिति का ज्ञान हुआ। मैं भी खाई की शरणागत, खतरा टलते ही अलार्म बजा, सब कुछ व्यवस्थित जैसे कुछ हुआ ही नहीं , मन्दिर में आ फिर सो गया। परमपिता परमात्मा और भारतीय शासन, सेना को धन्यवाद दिया। फिर गहरी नींद, फिर सवेरा हुआ, शहर में सब कुछ सामान्य हालात थे।

एक बहुत बड़े मैदान में मुख्यमंत्री जी ने सभा आयोजित की, प्रधानमंत्री शास्त्री जी ने कहा–हम गालियों का जवाब गोलियों से देना जानते है, डट कर सामना कर रहे है, किया भी था, आगे भी करते ही रहेंगे। इस अवसर पर राजस्थान वालों की मांग पर प्रधानमंत्री जी ने एक हवाई बेड़ा उपलब्ध होगा, का साहस भरा आश्वासन दिया। भारत माता की जय–जय करके। साथ लाखों जनता की उपस्थिति में मानों कहा–हम चाहे रहे ना रहे, तेरा वैभव अमर रहे भारत माता। मेरी यात्रा निरन्तर चलती रही, चली, चलेगी भी। तमन्ना है ये जिन्दगी हो लेकिन वैदिक धर्म प्रचार के लिए हो। सारा भारत मेरा है, मैं भारत का हूँ और रहूँगा भी। हम आर्य वीर–हम आर्य वीर। सैर कर दुनिया की बंदे जिन्दगानी फिर कहा, जिन्दगानी मिल भी गई तो नौजवानी फिर कहाँ। चलते रहो! चलते रहो।

परमपूज्य स्वामी जी से मैंने अपनी यात्रा के संस्मरण सुनाने के लिए निवेदन किया था उस समय जो उन्होंने कहा, उसके आधार पर।

प्रस्तुति–मनीष शर्मा
अजमेर

सुखी जीवन का सार

● भद्रसेन

सभी धर्म वाले धर्म का फल सुख, स्वर्ग मानते हैं, इस से यह स्वत सिद्ध हो जाता है, कि उन्हीं बातों, तत्त्वों, कार्यों, विधानों का नाम धर्म है। जिन के करने से सुख मिलता है, जैसे कि परस्पर स्नेह का व्यवहार करने से सभी सुखी होते हैं। आपस में एक दूसरे के साथ सत्य और प्रिय बोलने से वक्ता तथा श्रोता दोनों ही खुश होते हैं। ठीक इसी प्रकार सत्य के पालन, ईमानदारी आदि के वर्तने से सभी सुख की सांस लेते हैं और ऐसी बातों पर ही संसार का सारा व्यवहार टिका हुआ है। व्यक्ति और समाज का जीवन भी इस प्रकार की बातों को मानने एवं पालने से ही विकसित, सन्तुष्ट, सुखी, आनन्दित और शान्त होता है। अतः धर्म जीवन को सुखी बनाने की एक कला या प्रक्रिया ही है।

जब कोई यह कहता है, कि धर्म वह है, जिस से सुख मिलता है, तो ऐसी स्थिति में स्वाभाविक रूपेण कुछ कह सकते हैं कि वस्तुतः सुख का साधन तो भौतिक विज्ञान है। विज्ञान के विकास ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुखों की वर्षा ही कर दी है। जैसे कि पहले जाने–आने में कितना कष्ट होता था तथा कितना श्रम और समय लगता था, पर आज यातायात के साधनों ने यात्रा कितनी सुगम बना दी है। इसी प्रकार भौतिक विज्ञान ने भोजन, वस्त्र, भवन, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में भी अनेक सुविधायें उपस्थित कर दी हैं। अतः सुख चाहने वालों को हर तरह से उसको ही अपनाना चाहिए और उसी से ही सारा संसार सुखी होगा।

धर्म और विज्ञान– इस में कोई शक की बात नहीं है, कि भौतिक क्षेत्र मे विज्ञान ने मानव समाज को सुख–सुविधाओं से भर दिया है। अतः भौतिक सुविधायें प्राप्त करने के लिए वह अत्यन्त अपेक्षित है। जैसे पक्षी दोनों परों से उड़ान भरने में समर्थ होता है। ऐसे ही मानव समाज को सुखों के आकाश में उड़ान भरने के लिए धर्म और भौतिक विज्ञान दोनों की जरूरत है। ये दोनों एक दूसरे के सहयोगी हैं विरोधी नहीं। जैसे उद्योग और व्यापार (वितरण) एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और एक दूसरे के सहयोग के बिना अधूरे हैं। यदि उत्पादित वस्तु व्यापार द्वारा ही अपेक्षित स्थान पर पहुंचती है तथा वितरण से सर्वसुलभ होती है और तभी व्यवस्था ठीक चलती है। जैसे ये मिलकर आर्थिक स्थिति को सुन्दर बनाते हैं, ऐसे ही विज्ञान और धर्म भी मिल कर मानव समाज को सुखी बनाते हैं।

अतः धर्म और विज्ञान एक दूसरे के पूरक है, क्योंकि विज्ञान का कार्य है कमाना या कमाने के साधन उपस्थित करना और धर्म का कार्य है व्यवस्था करना। यदि कमाया न जाए, तो मानव समाज अपनी इच्छा की पूर्ति न होने से सुखी न हो सकेगा। ऐसे ही यदि व्यवस्था न की जाए, तो कमाया हुआ मिट्टी में मिल जाएगा अर्थात कमाने से सामाजिक पूर्ति होती है और व्यवस्था से कमाई ठीक ठिकाने पर लगती है। जैसे कि मानव समाज की भूख और नंग को दूर करने के लिए भोजन और वस्त्र की जरूरत होती है और इन की पूर्ति के लिए भौतिक विज्ञान अधिक से अधिक उत्पादनार्थ मशीनरी, खाद, कृत्रिम रेशे और वैज्ञनिक ढंग ला कर सहयोग देता है। इस के साथ धर्म भोजन और वस्त्र को पारस्परिक सहयोग, सद्भाव से सही बाँटने, धर्म पूर्वक बर्तने में सहयोग देता है। भोजन और वस्त्र सब के लिए पर्याप्त होने पर भी यदि उन को परस्पर सदभाव, सहानुभूति से बाँटा न जाए, धैर्य और संयम के साथ अपनी प्रकृति और पाचन शक्ति के अनुरूप खाया न जाए, तो पर्याप्त भोज्य पदार्थ होने पर भी आपस के झगड़े में वह बिना बटे ही पड़ा रह जाएगा और खाने वाले लहू–लुहान हो कर भूखे–प्यासे ही पड़े रहेंगे या वे अधिक, अखाद्य, बेमेल के पदार्थ खा कर लाभ के स्थान पर बीमारी भी खरीद सकते हैं। जैसे कि कुत्तों के आगे रोटियों का ढेर डाला जाता है, तो वे आपस मे लड़–झगड़ कर घायल और भूखे ही कोनों में पड़ जाते हैं, पर आपस में मिल बाँट कर खा नहीं सकते और न ही तब वे रोटियां उन की भूख को मिटा कर सुख का साधन बनती हैं। दूसरी ओर भेड़–बकरियों का झुण्ड अपर्याप्त घास में भी मिल–जुल कर खाने के बाद चैन से एक दूसरे पर सिर रख कर सो लेता है।

ठीक इसी प्रकार धर्म मेल–मिलाप, न्याय, दया, परोपकार, धैर्य आदि के अच्छे संस्कार डाल कर विज्ञान द्वारा दिए गए सुख–साधनों को बर्तना सिखाता है। अतः सुखी जीवन के लिए जहाँ भौतिक साधनों की जरूरत है, वहाँ उतनी ही उन के सही वितरण और उपयोग की भी अपेक्षा है, अन्यथा कुत्तों वाला ही हाल होता है।

आज संसार में भौतिक विज्ञान के कारण औद्योगिक और तकनीकि प्रगति से सुख–सुविधाओं का अम्बार लगता जा रहा है तथा संसार में आर्थिक समृद्धि आ रही है। इस प्रगति से प्रत्येक क्षेत्र में उत्पादन कई गुणा बढ़ गया है, पुनरपि विश्व की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग भूख, नंग, गरीबी, बेकारी और रोगों की लपेट में

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

आज हो या कल–नाप–तोल कर चल

● देव नारायण भारद्वाज

सृष्टि सृजन काल से आर्यावर्त में वेद का प्रभाव इतना अधिक रहा है कि अनेक वेद मन्त्रों का भावाशय ज्यों का त्यों लोक भाषाओं में व्यवहृत होता देखा जा सकता है। भाषा में हम कुछ कहावतें सुनते हैं–यथा "नाप तोल कर चलो" अर्थात् संयत होकर सन्तुलित रूप से अपने कार्यों को सम्पन्न करो, यदि ऐसा नहीं करोगे तो दूसरी कहावत बोल पड़ती है "नप जाओगे" अर्थात् दण्ड के भागी बनोगे। इन कहावतों की झलक जिस वेद मन्त्र से मिलती है, आइए उसका पाठ करें:–

अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान्भूयासम्।
यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा।।
अथर्व। 8.2.45।।

अर्थात–(मात्रा अमासि) मैंने मात्रा को मापा है। जीवन व्यवहार का प्रत्येक कार्य माप–तोल कर किया है। मैंने युक्तहार–विहार का ध्यान रक्खा है। सोना–जागना भी (मात्रा) मर्यादा में ही किया है। सभी क्षेत्रों में युक्तचेष्ट रहा है। इसी से (स्वः अगाम) सुख व आत्म–प्रकाश को मैंने प्राप्त किया है जिससे (आयुष्मान भूयाक्षम्) मैं प्रशस्त दीर्घ जीवन वाला बन सकूँ। (मात्रा) मर्यादा को मैंने इसीलिये मापा है–अनुपालित किया है कि (यथा अपरं न मायातै) कोई और वस्तु (नः) मुझे नाप ले। (शते शरत्सु पुरा) सौ वर्ष की आयु पूर्ण होने से पहले ही न मैं नव जाऊँ अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँ।

आज हो या कल अर्थात् सर्वत्र –सर्वदा ही मन्त्र वर्णित मात्रा या मर्यादा प्रतिपल सुफल प्रदान करती है। तेज दौड़ने वाला खरगोश यदि मार्ग में कभी दौड़ता है, कभी सो जाता है तो धीरे–धीरे चलते रहने वाले कछुये से भी हार जाता है। सतर्क बुद्धि से काम लेने वाला खरगोश बलशाली शेर को भी पराजित कर देता है। जंगल में नये आ गये शेर ने प्राणियों की अन्धाधुन्ध हत्यायें करना आरम्भ कर दीं। सभी पशु प्राणियों ने बैठक करके शेर को इस बात के लिये सहमत कर लिया कि "हे वन राज आप हम सभी की अधिक हत्यायें न करें। हम प्रति दिन एक पशु आप की सेवा में आहार हेतु भेज दिया करेंगे, आप को बिना किसी कष्ट के स्थल पर ही उदर पूर्ति होती रहेगी। शेर के दिन भली भाँति बीतने लगे। एक दिन बहुत विलम्ब के बाद नन्हा खरगोश उसके पास पहुँचा, तो शेर अत्यधिक क्रोधित हो उठा। खरगोश ने नम्र शब्दों में बताया–महाराज! मार्ग में एक और शेर स्वयं को जंगल का राजा बता रहा था। बहुत कठिनाई से बच कर आपके पास आ सका। आप न मानें तो चल कर देख लें। खरगोश ने ले जाकर कुएँ पर खड़ा कर दिया। भीतर झाँका तो वैसा ही शेर परछाई के रूप में देख दहाड़ लगा दी। दहाड़ की प्रतिध्वनि सुनकर क्रोधित शेर आक्रमण के लिए कुयें में कूद पड़ा। खरगोश की जान तो बची ही, प्राणियों की अन्धाधुन्ध होने वाली हत्याओं से भी वनचरों को राहत मिल गयी।

आशय यह नहीं कि शेर की प्रजातियाँ ही समाप्त हो जायें, उनकी वंश वृद्धि भी आवश्यक है। इसीलिए शासन द्वारा उनकी सुरक्षा के लिये परियोजनायें चलायी जाती हैं, जिनसे अन्य वन्य प्राणियों की वृद्धि पर भी बल दिया जाता है। यदि यही शेर या वन्य प्राणी जंगल से निकल कर नागरिक क्षेत्रों में घुस पड़ते हैं, तो यह उनके द्वारा मर्यादा का उल्लंघन है, जिस के लिये उन्हें दण्डित भी करना पड़ता है। मन्त्र में प्रयुक्त यह 'मास' शब्द अंग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावली में ज्यों का त्यों जाकर बैठ गया है। यहाँ पर यह मात्रा का बोधक है, जो भार (वजन) से भिन्न है। भार गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित होकर कम या अधिक होता रहता है, किन्तु मात्रा का परिमाण अपरिवर्तित करता है। ऐसे ही वेदोक्त मर्यादायें भी सदैव शाश्वत व सर्वहितैषी बनी रहती हैं। वेद में इस मर्यादा के सन्तुलन पर विशेष बल दिया गया है। "अथर्व 18.235 से 44 तक के सात मन्त्रों में इसके लिये प्रखर प्रोत्साहन के संकेत निहित हैं।

"इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै। शते शरत्सु नो पुरा।।" अर्थात् सब प्राणी परमेश्वर की ही वेदोक्त आज्ञा में रहकर निर्वाह करते है, सौ वर्षों में भी कोई उस मर्यादा को माप नहीं सकता, जो इसके विपरीत आचरण करता है, वह दण्ड का भागी बनता है। इन मन्त्रों में क्रमशः इमाम् (मात्रा) प्रेमाम् (प्रकृष्ट रूप से) अपेमाम् (सुख रूप से) वीऽमाम् (विशेष रूप से) निरिमाम् (निश्चय रूप से) उदिमाम् (उत्तम रूप से) समिमाम् (सन्तुलित रूप से) जीवन के व्यवहार को बनाता है, वह सफलता के उच्च शिखर पर पहुँच जाता।

यहाँ पर राजा ययाति का अनुभव सुनिये। वे अपने सद्गुणों के सहारे स्वर्ग में पहुँच गये थे। एक दिन उन्होंने कठोर वचन बोल दिये थे, तो इन्द्र ने उन्हें ऐसा धक्का दिया कि वे पृथ्वी पर आकर ठहर गये। अष्टक नामक प्रेमी उनसे मिलने आये और स्वर्ग से धरती पर आ जाने का कारण पूँछा, तो उन्होंने उत्तर दिया–अहंकार एवं वाणी का असन्तुलन तमाम पुण्यों को क्षीण कर देता है। उन्होने बताया–तप, दान, शान्ति, संयम, लज्जा, सरलता जीवों के प्रति दया भाव यही स्वर्ग के सात द्वार है। इन्हीं सद्गुणों को धारण कर मानव स्वर्गीय हो सकता है। वेदानुसार स्वर्ग कोई स्थान विशेष नहीं, प्रत्युत अवस्था विशेष है।

प्रतिष्ठा की पराकाष्ठा भी पल भर का प्रदर्शन है।

जिस शिला पर पहुँचे हो वहाँ भूकम्प भी आ सकता है।।

इतना समय नहीं मिलता कि सचल दूरभाष पर आने वाले सन्देश देख पाऊँ, पर मेरी पुत्री का कोई अच्छा सन्देश आने पर मन में हर्ष की लहर उत्पन्न कर देती है। एक ऐसे ही सन्देश के द्वारा मैं लेख का उप संहार करता हूँ। पढ़िये:

व्यवहार मीठा न हो तो हिचकियाँ भी नहीं आतीं,
बोल मीठे न हों तो मूल्यवान मोबाइलों पर घन्टियाँ भी नहीं आतीं।
घर बड़ा हो या छोटा, मिठासन हो तो इंसान क्या चीटियाँ भी नहीं आतीं।
जीवन का आरम्भ अपने रोने से होता,
जीवन का अन्त दूसरों के रोने से,
इस आरम्भ व अन्त का समय ही जीवन है।
इन्सान आदरणीय अपने कर्म से होता है, धन दौलत से नहीं।
बस, इतना देना मेरे मालिक।
अगर जमीन पर बैठूँ,
तो लोग उसे मेरा बड़प्पन कहें–मेरी औकात नहीं।

वरेण्यम् अवन्तिका (प्रथम)
रामघाट मार्ग, अलीगढ़,202001
उत्तर प्रदेश

☞ *पृष्ठ 08 का शेष*

सुखी जीवन ...

पड़ा हुआ तड़प रहा है। मानव समाज के एक वर्ग की ऐसी विवशता को देखते हुए भी दूसरी तरफ अरबों–खरबों रूपया भयानक से भयानक विध्वंसकारी अस्त्र–शस्त्रों तथा अणु–परमाणु–उदजन– हाईड्रोजन–न्यूट्रान बमों और अन्तरिक्ष युद्ध की तैयारी पर व्यय हो रहा है। एक–दो ही नहीं, अपितु हजारों उच्चशिक्षा प्राप्त वैज्ञानिक, सैनिक मारक हथियारों की खोज में लगे हुए हैं। अपने–अपने प्रभाव वाले क्षेत्रों को बढ़ाने की सब ओर एक दौड़ लगी हुई है। आश्चर्य है कि दूसरों के विनाश के उपायों को सजाते हुए, इन की नैतिकता, इन्सानियत जागती नहीं। मानव को इस स्थिति से उभारने के लिए और मानव में एक–दूसरे के दुख–दर्द की अनुभूति को कराने के लिए आज सब से प्रथम सत्य–स्नेह–ईमानदारी–सहानुभूति की भावना भरने वाले धर्म की जरूरत है। जिस से मानव समाज में भ्रातृभाव, उदार दृष्टिकोण और विश्वबन्धुता आए और जिस से उस के हृदय में सन्तोष, प्रेम, सहनशीलता की भावनायें घर कर सकें। तभी मानव समाज भौतिक विज्ञान को विनाश का साधन न बना कर सुख का साधन बना सकेगा। अन्यथा श्री खुशीराम शर्मा वशिष्ठ द्वारा 'आदमी' नामक कविता में कहे गए भाव ही लागू होते दिखाई देते हैं

'आज बढ़ता जा रहा है, आदमी का ज्ञान,
आज बनने जा रहा है, आदमी भगवान।
गा रहा है मनुज यों अपनी विजय के गीत,
कौन जाने हाय रे! यह हार है या जीत।
कर चुका है आज अणुबम आदमी तैयारी,
ताकि लाखों आदमी हों एक पल में क्षार।
ताकि लाखों वर्ष का संचित हुआ यह ज्ञान,
एक पल में भस्म कर पाए स्वयं इन्सान।
आज अपने आप को भी ले तनिक पहचान,
बढ़ गई है बुद्धि तेरी, बढ़ गया है ज्ञान।
पर हृदय की शून्यता पर भी तनिक दे ध्यान,
ले बसा सूने हृदय में, प्रेम के भगवान।
दे दया, करुणा अहिंसा को हृदय में स्थान,
सिसकते हैं द्वेष से झुलसी धार के प्राण।
हाय रे इन्सान! तू इन्सान बन इन्सान।।'

तात्पर्य–

अतः आज सब से पहली आवश्यकता यही है, कि धर्म और भौतिक विज्ञान का समन्वय हो, तभी ये दोनों मिल कर समाज को सुखी बना सकेंगे। जैसे कि विज्ञान यातायात के लिए अच्छे से अच्छे वाहन उपस्थित करे और धर्म–बस, रेल आदि में यात्रा करने वालों को अपनी बारी पर सही ढंग से टिकट लेने, परस्पर मिल–जुल कर यात्रा करने की भावना और रेल, विमान आदि के कार्यकर्त्ताओं में अपने–अपने कार्य को ईमानदारी से करना सिखाए जिस से यातायात की व्यवस्था व्यवस्थित हो, अन्यथा अव्यवस्था में किसी को भी सुख की सांस नहीं मिल सकेगी। धर्म के बिना अकेली भौतिक प्रगति से व्यक्ति साँड के समान उद्दण्ड, संहारक बन जाता है और दूसरी ओर भौतिक विज्ञान के बिना धर्म रूढ़िवादी विधवा की तरह अकर्मण्य, जड़, आकर्षणहीन हो जाता है। जब धर्म सत्य का ही नाम है और विज्ञान सत्य की खोज की प्रक्रिया है, तो फिर इन में विरोध की बात ही कैसे?

निःसन्देह पिछली शताब्दियों में धर्म ने रूढ़िवाद का रूप धारण करके विज्ञान को भौतिक सच्चाइयाँ उपस्थित नहीं करने दीं और तथाकथित धर्माचार्यों ने जो कहा, उस को अन्तिम लकीर बनाने का

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पत्र/कविता

देखें तो कितना बल है इन क्रान्तिकारी उद्‌गारों में

मानव ने पत्थर पूजे पर
मानव को कब कौन पहचान सका।
यद्यपि इसकी ही छाया से
पा रंग रूप भगवान सका।।

मानव फुटपाथों पर सोते
भगवान् भवन के झूलों पर।
मानव–सुत पत्तल चाट रहा
नैवेद्य वहाँ थाली भर–भर।।

जा रही हज़ारों की लाशें
बेकफन यहाँ श्मशानों पर।
श्रृंगार नहीं पूरा होता
इनका रेशम की थानों से।।

पत्थर नहलाए जाते हैं
दुर्भाग्य दूध घी से, जल से।
भूखी भिख मंगन का बच्चा
दो बूँद न पी पाया कल से।।

इंसान–'उठो' फेंको पत्थर,
मानव का जब पूजन होगा।
तब स्वर्ग नरक के ठेकों का
सौदा नीलाम नहीं होगा।।

मेरी आवाज़ पुकारेगी
मानव–मानव के कानों में।
देखें तो कितना बल है
इन क्रातिकारी उद्‌गारों में।।

श्रीमति पंकज सूद
डी.ए.वी.पब्लिक स्कूल
सैक्टर–3, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

देश से भ्रष्टाचार और धर्म से पुरोहिती पाखण्डों को दूर करना होगा

हम भारतीयों का सौभाग्य है कि हमारे निर्मल वेद और ऋषि पतंजलिकृत योगशास्त्र में सांप्रदायिक (मजहबी) पक्षपात रहित मानवोत्थान के चरमोत्कर्षी सारे गुण तो हैं किन्तु कर्मकांडी–धर्माडंबर इसमें जरा–सा भी नहीं है। "ध्यान करने योग्य उस निराकार ईश्वर का नाम ओ३म् (प्रणव) है" इसमें यदि यह भी लिख न होता तो नास्तिक लोग इस ग्रंथ को भी अपनी ही जमात में मिला लेते। ईश्वर–प्रदत्त इस मानव शरीर को योग–विधि से चरमोत्कर्ष तक पहुंचाने वाली इस वैज्ञानिक–पुस्तिका पर हमें गर्व है।

स्वस्थ–सुखी–सुस्मित व्यक्ति ही सारे संसार को भी सुखी देखना चाहता है, रूग्ण तन–मन वालों से ऐसी उम्मीदें नहीं की जातीं। इसीलिए आज प्रदूषित–पर्यावरणी प्रकोपों से बचे रहने के लिए योग–प्राणायाम का जन–जन में प्रचार करना अत्यावश्यक हो गया है। योग दिवस, योग सप्ताह के बहाने हम सभी मानवतावादी समाजसेवी योग शिक्षकों–योगप्रेमियों का कर्त्तव्य हो जाता है कि इस दिन प्रातः काल अमृतवेला में योग के सरल सर्वग्राह्य विधियों से परिचय कराते हुए दुनियाँ के बंधुओं (भाई–बहनों) से जुड़े और जोड़े; आंतरिक विकारों को मिटाकर हर किस्म के दूरियों को तोड़े। स्वयं निरोगी रह कर, सब को निरोगी रखकर, सब से जुड़ने और सबको जोड़ने का ही नाम है

योग भारत देश और हिन्दु धर्म के लिए तो गर्व की बात है, अकाल मौतों से जूझ रही हमारी विश्वमानवता के लिए भी ये उतनी ही सौभाग्य की बात है। किन्तु केवल योग पर आत्म मुग्ध हो के हमें इठलाना नहीं चाहिए, क्योंकि अभी भी हम अपने 'देश' से भ्रष्टाचारों और 'धर्म' से पुरोहिती–पाखंडों (धार्मिक दलालों) को मिटाये बिना न तो इस महान देश–धर्म का भला कर पायेंगे और न प्यारी विश्व–मानवता का ही।

आर्यगिरि, निंगा, आसनसोल (प.बं.)
9735132360

****

वायु प्रदूषण करने के लिए आर्य समाज आगे आये

महर्षि दयानन्द जी ने आर्य समाज की स्थापना एक क्रांतिकारी और प्रगतिशील संस्था के रूप में की थी। इस के दस नियम मानव निर्माण के साधन हैं जो सबके लिए उपयोगी है। छठे नियम में कहा गया है कि संसार का उपकार करना इसका मुख्य उद्देशय है इस समय सारा संसार वायु–प्रदूषण से दुखी है। महर्षि दयानन्द ने लुप्त हो रेही यज्ञ प्रथा को फिर से स्थापित किया था जिससे स्थान–स्थान पर अग्निहोत्र प्रकति होने लगे थे। हवन में शुद्ध तथा जड़ी बूटियों से तैयार की गई ऋतु अनुकूल सामग्री प्रयोग की जाती है इससे वायु मण्डल शुद्ध होता है। सांस की बीमारी से मनुष्य बचे रहते हैं और साथ ही वेद मन्त्रों के उच्चारण करने से ईश्वरीय ज्ञान की रक्षा होती है। वेद मन्त्रों का उपदेश सब मनुष्यों के लिए लाभ कारी है। महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज मन्दिरों में साप्ताहिक हवन करने की प्रथा चलाई थी और सब लोगों को यह भी निर्देश दिया था कि प्रातः सायं अपने अपने घरों में हवन किया करें इससे वह स्वस्थ बने रहेंगे और दीर्घ काल तक जीवित भी रहेंगे।

दिल्ली महानगर में इस समय 300 के लगभग आर्य समाज हैं जिनमें हर रविवार को हवन होता है। इस समय दिल्ली में वायु का प्रदूषण बहुत बढ़ा हुआ है इसलिए सब आर्य समाजों को अपने अपने मन्दिरों से बाहर निकल कर सार्वजनिक स्थानों पर हवन का आयोजन करना चाहिये। बढ़ते हुये प्रदूषण को दूर करने के लिए सम्पूर्ण यजुर्वेद यज्ञ को लगातार कई दिनों तक करने से विशेष लाभ हो सकता है। कई आर्य समाजों में तो प्रतिदिन दैनिक यज्ञ भी होता है यह बड़ी अच्छी बात है। यदि कोई आर्य समाज चारों वेदों का यज्ञ सार्वजनिक स्थान पर अपने अपने क्षेत्र में करे तो इससे बड़ा लाभ होगा। जनता और सरकार भी इसमें सहयोग कर सकते हैं। इस समय प्रदूषण दूर करने के लिए यह आवश्यक है।

अश्विनी कुमार
सी 223 ननाक पुरा नई दिल्ली–21

****

हमारी यह भाषा कैसी

अचानक देश में इतनी खलबली क्यूं मच गई है। मानों नेता, अभिनेता सब अपनी सीमाओं और मर्यादाओं को भूल गए हों। एक मुकाबला है जिसमें अनुशासन, तमीज, भाषा आदि की सब मर्यादाओं को लांघकर अहंकार को हवा दी जा रही है। हम सबको कहीं ठहरकर ठण्डे दिमाग से सोचकर नियंत्रित भाषा एवं विचारों के प्रयोग का उदाहरण पेश करना पड़ेगा

कमलेश चान्दना
721, मॉडल टाऊन, पानीपत–132103

****

☞ पृष्ठ 05 का शेष

चरित्र निर्माण हेतु...

विद्यार्थी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है, उस समय गुरु शिष्य को अन्तिम उपदेश देते हुए कहते हैं– **'स्वाध्यायान्मा प्रमदः'** मेरे प्यारे शिष्यो! गुरुकुल में रहते हुए स्वाध्याय के प्रति तुम सदा उन्मुख रहे हो। देखना यहाँ से विदा होकर अपनी इस प्रवृत्ति और स्वभाव को कहीं छोड़ मत देना।

वेदादि सत्य शास्त्रों के अध्ययन से आत्मकल्याण और आत्मबोध होता है। नियमित स्वाध्याय से मन सूक्ष्म विषयों को भी ग्रहण करने के योग्य बनता है। चित्त की वृत्तियाँ अन्य साधनों के सहयोग से ऐसी बनने लगती हैं कि फिर बुराई अर्थात् दुर्गुण की ओर नहीं जा सकतीं।

अव वेदि होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद्वरुणध्रुतः सः।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम्।। (ऋ. 7/60/9)

जो विद्वान् जन वैदिक वाणियों से सब व्यवहारों को सिद्ध करके दुष्ट कर्मों और दुष्टों को त्याग देते हैं, वे ही उत्तम सुख पाते हैं।

किन्तु स्मरण रहे स्वाध्याय मात्र से लक्ष्य की प्राप्ति संभव नहीं जब तक व्यक्ति तदनुकूल आचरण न करे। महर्षि मनु लिखते हैं

अनपढ़ों से पढ़नेवाले श्रेष्ठ हैं। ग्रन्थ पढ़नेवालों में ग्रन्थों का स्मरण करनेवाले श्रेष्ठ हैं। ग्रंथों का स्मरण करनेवालों से अर्थों को जाननेवाले श्रेष्ठ हैं और ज्ञानियों से पढ़े और समझे हुए को आचरण में लानेवाले श्रेष्ठ हैं।' (मनु. 12/103)

दुर्व्यसन को दूर करने का साधन है सत्संग

सत्संग अर्थात् वैदिक विद्वान्, गुणीजन एवं उपदेशक का संग ज्ञान–प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण साधन है। सत्संग में यज्ञ के साथ भजन एवं प्रवचन का लाभ प्राप्त होता है। भजन के माध्यम से अल्पसमय में ही बहुत ही गंभीर बातों को रोचक तरीके से गा दिया जाता है, जो मन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। विद्वज्जन के प्रवचन तो हैं ही ज्ञान के मुख्य साधन। वे अथक परिश्रम से इनका संग्रह करते हैं, जो हमें संक्षिप्त समय में उदाहरण द्वारा बता दिया जाता है। जिन्हें स्वाध्याय का समय नहीं मिलता उन्हें नियमित सत्संग में जाकर विद्वानों के प्रवचनों को एकाग्रता से सुनना चाहिए। जो सुना है उस पर चिंतन, मनन करना चाहिए। यह मान्यता वेद मंत्रों के प्रमाणों से भी सम्पुष्ट होती है।

देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे।। (अथर्व. 2/4/4/)

मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के सत्संग से दुःखनाशक परमेश्वर के उपकारों पर दृष्टि करके पुरुषार्थ से पथ्य द्रवों का सेवन करके विघ्नकारी दुष्ट जीवों, पापों को हटाकर सदा आनन्द में रहें। इसलिये उपासक को चाहिए कि कभी भी नास्तिक, विश्वासघाती, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि मनुष्यों का संग न करें। और जो सत्यवादी, परोपकार–प्रिय आप्तजन हैं, उनका सदा संग करें। सब उपासकों को उचित है कि दुर्व्यसनों से पृथक् होकर धर्मयुक्त आचरणों के द्वारा सदा शुभ कर्म किया करें।

दुःखों को दूर करने का साधन है समर्पण

दुःखों को दूर करने हेतु साधक पुरुषार्थी होकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करें, दुखों का कारण जानें, अन्तःकरण में दुर्वासनाओं या कुवासनाओं को उठने न दें और वर्तमान जीवन में दुष्कर्म से दूर रहें, जिससे अगले जन्मों में दुःख प्राप्त न हो। कुवासनाओं का त्याग दुःखों के छूटने का उत्तम उपाय है, देखें प्रमाण–

आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव।
रेष्मछिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः।। (अथर्व. 6/102/2)

मनुष्य अपने मन को कुवासनाओं से खींचकर तत्त्व विचार में ऐसे लगावें जैसे सुसारथी चंचल घोड़ों को बागडोर से वश में करता है अथवा जैसे आँधी से छूटकर घास आँधी के वश में हो जाती है।

दुःखों को दूर करने का सर्वोत्तम साधन समर्पण का भाव है। जब मनुष्य प्रत्येक कार्य परमेश्वर में समर्पण की भावना से सम्पन्न करता है तो उसमें स्वार्थ, पक्षपात व लोभ की भावना नहीं उभरने पाती। इस प्रकार के अनुष्ठान से चित्त ब्राह्य विषयों में लिप्त नहीं होता और ईश्वर के प्रति भक्ति का उद्रेक जाग्रत होता है। समस्त कार्य को मानो हृदयस्थ परमेश्वर के द्वारा प्रेरित होकर कर रहा हूँ, ऐसी भावना को दिन–रात, प्रतिक्षण अनुभव करना ही ईश्वर के प्रति समर्पण है। जैसे सच्चा देशभक्त अपने देश के प्रति समर्पित होता है तो उसे अपने देश की स्वतंत्रता के लिये कारागार की भीषण यातनाएँ भी दुःखदायी मालूम नहीं होतीं। यहां तक कि फांसी का फंदा भी उनको फूलों का हार नजर आता है। वैसे ही समर्पित उपासक को लोगों के कटुवचन भी व्यथित नहीं करते हैं। महर्षि दयानन्द ने विष देने वाले को भी धन देकर भागने की सलाह दी थी। समर्पित हृदय करुणा से पूर्ण होता है।

समर्पण की भावना से ओतप्रोत रहनेवाला उपासक अतिशय निःशंक एवं सब प्रकार की बाधाओं से अपने आपको सुरक्षित अनुभव करता है। जब कोई उपासक अपनी समस्त भावनाओं को परमेश्वर में निहित कर देता है, तब परमेश्वर उपासक के अभीष्ट को सिद्ध करता है। प्रभु का यह अटल नियम है कि वह आत्मसमर्पण करनेवाला का कल्याण करता है। वेद में कहा है–

यदङ्गदाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेतत् सत्यमङ्गिरः।। (ऋ. 1/1/2/1)

प्रभु का यह अटल नियम है कि वह आत्मसमर्पण करनेवाले का कल्याण करता है।

किन्तु स्मरण रहे परमेश्वर को साधक वही समर्पित करता है, जो शुभ है, दिव्य है, पवित्र है। इसलिये साधक पूर्ण श्रद्धा, भक्ति व सर्वात्मना प्रयत्न से वही काम करेगा जिसे वह परमेश्वर को समर्पित कर सके। सच्चाभक्त सदा यह विचार करता है कि मुझे इस जीवन में यह शरीर मिला है, सुख, समृद्धि मिली है वह सब परमेश्वर की ही कृपा से मिला है। अतः इस जीवन का सम्पूर्ण प्रयास यही हो कि मैं सब कुछ प्रभु के अर्पण कर दूँ। ऐसे सर्वात्मना समर्पित साधक पर ही परमेश्वर की कृपा व ईश्वरीय अमृत सदा बरसता है।

शेष अगले अंक में....

☞ पृष्ठ 09 का शेष

सुखी जीवन ...

प्रयास किया गया। पुनरपि जब कोपर्निक्स (1473–1553), जिओ दोनो ब्रूनो (लगभग 1548–1599), गैलिलिओ (1568–1682) ने भौतिक सच्चाइयों को सामने लाने का प्रयास किया, तो उनका मुँह बन्द करने के लिए प्रतिबन्ध लगा, अग्नि में जला, माफी मंगवा कर दण्ड दिया गया। पर यह सब तो उन तथा कथित धर्मध्वजियों की अयोग्यता, अज्ञानता, अविवेक का कुपरिणाम था, कि उन्होंने अपनी अयोग्यता को छिपाने के लिए भौतिक सच्चाई को दबाया या लोगों को आपस में बाँट कर धर्म के नाम घृणा, ईर्ष्या, द्वेष की भावनायें उभारीं, जी लड़ाइयों और दंगों की जड़ बनी।

प्रशासन और सुख–हां, धर्म के समान प्रशासन, सरकार भी व्यवस्था करती है, जिस के कारण सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। और सभी को सुख मिलता है। पर प्रशासन का बड़ा सहारा शक्ति, दण्ड, होता है, कोई व्यवस्था को भंग न करे, इस के लिए सरकार कानून बनाती है, पुलिस, सुरक्षा सेना रखती है और जो नियम को भंग करता है उसको दण्ड देती है। वह शक्ति के प्रदर्शन से किसी के

1– शस्त्रशास्त्रचिन्तयो र्मध्ये शस्त्रचिन्ता गरीयसी।

शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्तनं प्रवर्तते।।
दण्डनीतिरेका विद्या, तस्यां हि सर्वा विद्याः प्रतिबद्धाः, जयानयौ दण्डनीत्याम्
आन्वीक्षिको त्रयीवार्तानां योगक्षेम साघको दण्डः,
तस्य नीति र्दण्डनीतिः, तस्यामायत्ता लोकयात्रा, सुविज्ञात प्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थ कामैर्योजयति का अर्थ 1,4
राजानं प्रथम विन्देत्ततो भार्या ततो धनम्।
राजन्यसति लोके ऽस्मिन्कुतो घनज्ञ।। 160 हित.मित्र.
–जीव्यते न तु भूपतौ।। 161 हित. मित्र
यदि न स्यान्नरपतिः सम्यङ् नेता ततः प्रजाः। अकर्णधारा जलधौ विप्लवेतेह नौरिव

वर्धनाद् रक्षणं श्रेयस्तदभावे सदप्यसत् 3, हित. विग्रह.

2–दण्डः **शास्ति प्रजा सर्वा, दण्ड एवामिरक्षति। दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्म विद्व र्बुधाः मनु.7 /8 पशुपन को प्रकट होने नहीं देती, पर केवल प्रशासन से कोई व्यवस्था सुचारु नहीं चल सकती, क्योंकि शक्ति, दण्ड की आंख हटते ही स्वार्थी मौके** का लाभ उठाने के लिए उतावले हो जाते हैं।

दूसरी ओर धर्म का मुख्य कार्य है, व्यक्ति में सुसंस्कार भरना। धर्म अच्छे संस्कारों द्वारा व्यक्ति का स्वभाव ऐसा बना देना चाहता है, कि जिस से व्यक्ति में पशुपन रहे ही नहीं। अतः धर्म सच्चे–मुच्चे ईमानदार, परोपकारी, दयालु, स्नेही बनने के लिए प्रेरणा देकर स्वेच्छा से अच्छा बनना सिखाता है। प्रायः अच्छे संस्कार न होने पर व्यक्ति का अधिकतर दुरुपयोग ही करता है यहाँ संस्कृति और संस्कार एक ही भाव में हैं। व्यक्तियों के अच्छेपन की भावना (धर्म) न होने के कारण ही अच्छे से अच्छे नियम भी व्यवस्था बनाए नहीं रख सकते।

इस सारे विश्लेषण से स्पष्ट होता है, कि धर्म और विज्ञान जहां परस्पर पूरक हैं, वहां धर्म तथा प्रशासन (सरकार) अपने–अपने ढंग से मानव समाज को व्यवस्थित करने का प्रयास करत हैं। अतः धर्म का भाव है, प्राणियों को अधिक से अधिक सुखी बनाने के लिए मनुष्य के मन पर सदाचार, सद्व्यवहार, परस्पर विश्वास और सहयोग के संस्कार डालना। जिससे सद्गुण मनुष्य के स्वाभाव का अंग बन सकें। स्वभाव के परिवर्तन से ही स्थायी सुधार आता है, जबरदस्ती से नहीं।

अतः इस सारे का भाव यही है कि जीवन को सरल–सुखी तथा सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् बनाने के लिए मधुर बोल की तरह हमें परस्पर सद्भाव, स्नेह, सहयोग, संयम और ईमानदारी को अपनाना चाहिए।

प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति गीता3,33

82 शालीमार नगर
होशियार पुर–146001

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 23-24 \12 \2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39 \57

डी.ए.वी सैक्टर-15 ए, चंडीगढ़ को मिला प्रथम पुरस्कार

आर्य समाज सैक्टर–9, पंचकूला (हरियाणा) के उन्नतीसवां वार्षिकोत्सव के शुभावसर पर दिनांक 4.12.2015 को अयोजित 'समूहगान' प्रतियोगिता में विभिन्न विद्यालयों के विद्यार्थियों ने प्रतिभागी के रूप में प्रस्तुति दी। डी. ए. वी मॉडल स्कूल सैक्टर–15 ए, चंडीगढ़ के विद्यार्थियों को प्रथम पुरस्कार मिला। प्रतिभागी के रूप में निम्न विद्यार्थी थे– कक्षा बारहवीं के कुमार संभव, कर्ण, हर्षक एवं कुछ कक्षा ग्यारहवीं के रमनजात, मेधावी, व्यानी एवं प्रभजात।

उपर्युक्त प्रतियोगिता के अध्यक्ष श्री आर.सी. जीवन जी ने इस सफलता पर प्राचार्या श्रीमती अनुजा शर्मा जी को हार्दिक बधाई दी एवं प्रतिभागियों का भी उत्याहवर्धन किया तथा उन्हें आशीर्वाद दिया।

अखिल भारतीय सोनपुर मेला में वेद प्रचार महोत्सव सम्पन्न

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, विहार के नेतृत्व में अखिल भारतीय पशु मेला, सोनपुर, सारण (बिहार) स्थित आर्य समाज के प्रांगण में छः दिवसीय वेद प्रचार महोत्सव धूमधाम से मनाया गया।

उद्घाटन के अवसर पर डॉ. यू. एस. प्रसाद प्रधान आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, बिहार के साथ श्री इन्द्रजीत राय (क्षेत्रीय निदेशक) डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल्स, बिहार प्रक्षेय–3, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना के प्रधान भाई बीरेन्द्र सिंह (एम. एल. ए.) मंत्री श्री रमेन्द्र गुप्ता तथा अनेक डी. ए. वी. पब्लिक स्कूलों के प्राचार्यगण और आर्य समाज के सैंकड़ो कार्यकर्त्ताओं ने यज्ञ में भाग लिया। तदुपरांत ओ३म् पताका, जल वितरण एवम् आर्य समाज की पुस्तकों का वितरण तथा अतिथियों की ठहरने की सुविधा, ऋषि लंगर तथा सुसज्जित वेद–प्रचार रथ द्वारा उपदेश मधुर एवं सरल क्षेत्रीय भाषा में वैदिक सिद्धांतों का प्रचार–प्रसार कर रहे थे।

प्रतिदिन प्रातः 5 बजे प्रभात फेरी तदुपरांत यज्ञ–हवन, 11 बजे से रात्रि 10 बजे तक मंच से भजन–प्रवचन एवं शंका–समाधान का कार्यक्रम चलता था। इस महोत्सव में जितेन्द्र देव आर्य (बेरली) पंडित सत्य प्रकाश आर्य भजनोपदेशक, पटना, पंडित मनोज शास्त्री (डी.ए.वी. वाल्मी, पटना), पंडित सत्योम शास्त्री (डी.ए.वी औरंगाबाद), पंडित वीरेन्द्र शास्त्री (डी.ए.वी. सासाराम), पंडित सिकंदर शास्त्री (डी.ए. वी. कैन्ट एरिया, गया), पंडित शशिकान्त आर्य (डी.ए.वी., दाउदनगर), पंडित विष्णुपद शास्त्री (डी. ए. वी. पुसौली), पंडित शशि शास्त्री (डी.ए.वी. शेरघाटी) आदि विद्वानों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया तथा वैदिक विचारों से लोगों को लाभन्वित किया। जिला आर्य सभा, वैशाली के अधिकारियों का विशेष सहयोग रहा।

यज्ञ की पूर्णाहुति तथा ध्यज अवतरण कर शान्तिपाठ एवं जयघोष के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

भारतीय हिन्दू सभा द्वारा स्वामी श्रद्धानन्द जी की जीवनी का अंग्रेज़ी अनुवाद

आर्य समाज मंदिर आर.के. पुरम, सेकटर–9 के प्रधान तथा भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा के (कार्यकारी प्रधान) श्री हरबंश लाल कोहली जी ने डॉ. सुन्दर लाल कथूरिया जी द्वारा हिन्दी में लिखी गयी स्वामी श्रद्धानन्द जी की जीवनी का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है, जिसमें विश्व के अनेकों देशों में स्वामी जी के आदर्शों, संकल्पों का प्रचार प्रसार हो सके।

इस पुस्तक का विमोचन श्री आनन्द कुमार चौहान (संस्थापक अध्यक्ष–एमिटि शिक्षण संस्थान के चेयर मैन ए.के.सी. ग्रुप ऑफ कम्पनी के द्वारा किया गया। मुख्य अतिथि श्री सुभाष आर्य (महापौर) थे। तथा वैदिक विद्वान डॉ. महेश विद्यालंकार, स्वामी श्रद्धानन्द, डॉ. अनिल आर्य, डॉ. सुन्दर लाल कथूरिया, श्री धर्म नारायण (धर्म प्रचार प्रमुख) श्री अनिल शर्मा– (पूर्व विधायक) इत्यादि उपसिति थे।

उस अवसर पर श्री रामनाथ सहगल, श्री ललिता निझावन, श्री विनय कुमार बत्रा, श्री रवि चौधरी, श्री सुभाष चांदना, श्री चन्द्रभान चौधरी पो. रामविचार, श्री भुवनेश कुमार गौड़, डॉ. सुन्दर लाल कथूरिया, श्री नरेश गोड़, श्रीमती सरोज यादव, लेफि.जनरल धर्मवीर कालरा आदि को सम्मानित किया गया। आशीर्वाद स्वामी प्रणवानन्द जी (आचार्य गुरुकुल गौतम नगर) ने दिया। आये हुए सभी अतिथियों को धन्यवाद श्री नरेन्द्र वलेजा जी ने किया। इस कार्यक्रम के संयोजक श्री चतर सिंह थे तथा सहयोगी केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् दक्षिणी दिल्ली वेद प्रचार मण्डल थे। कार्यक्रम में आये हुए अतिथियों का स्वागत डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सेक्टर–9 के प्रधानाचार्य श्रीमती अनिता चोपड़ा तथा अध्यापक एवं अध्यापिकाओं ने किया।

डी.ए.वी. काशीपुर में देव यज्ञ

वेद प्रचार सप्ताह के देव यज्ञ का आयोजन किया गया। देव यज्ञ कार्यक्रम में विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री एस.के. श्रीवास्तव एवं समस्त शिक्षक तथा छात्र छात्राऐं उपस्थित थे। यज्ञ के आचार्य विद्यालय के अध्यापक श्री आई.डी. पन्त थे जिन्होंने वैदिक विधि विधान एवं वैदिक मंत्रोच्चार से यज्ञ सम्पन्न कराया।

यज्ञोपरांत विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री एस.के. श्रीवास्त ने यज्ञ का महत्व बताते हुए कहा कि अग्निहोत्र उस महान प्रभु द्वारा रचाए गए प्राकृतिक यज्ञ का ही एक रूप है। जब अग्नि में कोई वस्तु डाली जाती है तो अग्नि उसको स्थूल रूप को तोड़कर सूक्ष्म बना देती है, अतः अग्नि में डाला गया पदार्थ हल्का होकर शीघ्र सारी वायु में फैल जाता है। उसकी भेदक शक्ति बढ़ जाती है। इससे वायुमण्डल शुद्ध होता है। जैसा लाभ प्राणियों एवं पर्यावरण को यज्ञ के अनुष्ठान से होता है वैसा लाभ किसी अन्य उपाय से नहीं हो सकता।

इस कार्यक्रम मे छात्र–छात्रोओं तथा अध्यापक एवं कर्मचारी वर्ग ने सोत्साह भाग लिया

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**